समरथ

जनवरी–फरवरी 2005 नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

आज़ादी के बाद से आज तक हाथ काम के लिए और किसान अपने खेत और अपनी पैदावार पर हक के लिए जूझ रहे हैं। जमींदारी खत्म हुई काग़ज पर। मालिकाना हक वैसा का वैसा ही रहा। नागार्जुन तो 1961 तक का हाल कह रहे हैं। 2004 की स्थिति तो और भी गंभीर हो चली है। अब तो मालिकाना हक देशी ज़मींदारों और पूंजीपतियों के भी हाथ से निकलकर विदेशी मालिकों तक पहुंच रहा है। अचरज न होगा कि स्थितियां 1947 के पहले जैसी बन जायें। हां, आशा की किरण हमेशा की तरह आज भी बाकी है। दूर-दूर से अपना हक मनवाने जनता की हुंकार तब भी उठी थी जब अंग्रेज भागे थे, और आज भी यह हुंकार उठ रही है। और इस बार भागने की बारी होगी भूमण्डलीकरण के भेष में साम्राज्यवादी लुटेरों की।

दूर-दूर से आए हम मनवाने निज...

नागार्जुन

दूर-दूर से एकड़ खेत पड़े हैं, ठप है पैदावार
फ़ाज़िल धरती का कण-कण करता है हाहाकार
हाय, लोक-लक्ष्मी के सपने हुए नहीं साकार
हाय, करोड़ों हाथ रहेंगे यों ही क्या बेकार?

कागज़ पर खेती होती है, कलम हुई हर-फार
छोड़ रहे हैं गाँव-गाँव खेत-मज़दूरों के परिवार
कृषि विकास की ख़बरें प्रति दिन छाप रहे अख़बार
असेम्ली की छत पर फ़सलें उगा रही सरकार

ज़मींदार थे सौ, उनके बच्चे हैं बीस हज़ार
उपजाऊ खेतों पर उनको दिला दिया अधिकार
बंजर-परती के भी तो हम हो न सके हक़दार
हदबंदी बिल पेश हुआ था, उसका बना आचार

नए मिनिस्टर नई-नई कारों की रही बहार
नई-नई मालाओं से हो नित्य नया श्रंगार
जयति विनोदानंद! मुख्यमंत्री युग के अवतार!
बतलाओ प्रभु, कृषकों का बेड़ा होगा कब पार?

क़ानूनों के पोथे हैं, उन पर है गर्द-गुब्बार
फ़ाइल से सौ गुनी अधिक है चींटी की रफ़्तार
सड़ी-गली नौकरशाही है शासन का आधार
पग-पग पर है ज़ोर-जुल्म, पग-पग पर भ्रष्टाचार

अन्न-वस्त्र की महँगाई से यों भी थे बेज़ार
कमर तोड़ देगी अब तो यह टैक्सों की भरमार
मत समझें इन नारों को बच्चों की चीख़-पुकार
दूर-दूर से आए हैं हम मनवाने निज अधिकार

नब्बे प्रतिशत जनता की खातिर है मौखिक प्यार
धनपतियों के हित में बजते होंगे दिल के तार
ग़लत आँकडों से दिमाग़ पर पड़ता होगा भार
अजी, आप भी क्या कहते हैं, हैं बिल्कुल लाचार

तेल निकलता है बालू से, ढलता है कलदार
उजली टोपी ऊपर है, नीचे काला बाज़ार
पठित ठगों की कूटनीति से नरक बना संसार
युग-युग का दुखिया किसान अब मान जाए क्या हार?

नहीं-नहीं सो कैसे होगा, क्यों मानें हम हार?
नभ से संघबद्ध जनता का गूँज गया हुंकार
मत समझो इन नारों को बच्चों की चीख़-पुकार
दूर-दूर से आए हैं हम मनवाने निज अधिकार

स्वतंत्रता आंदोलन—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और हिन्दू महासभा

ऐसे दावे किये जाते हैं, कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवकों ने स्वतंत्रता के कई आंदोलनों में भाग लिया, कि सावरकर महान ब्रिटिश विरोधी क्रांतिकारी थे, कि हिन्दुत्व (हिन्दू महासभा और रा. स्व. संघ) देशभक्ति की सबसे बड़ी शक्ति है, कि इस शक्ति ने ''राष्ट्र-निर्माण'' में महान योगदान दिया है, कि वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया और उसके लिये जेल गये। यहां पर हम इन अधिकांश दावों का आलोचनात्मक परीक्षण करेंगे।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष :

अनेक आन्दोलनों और संघर्षों के फलस्वरूप भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से मुक्ति मिली। इनमें सबसे अग्रणी और भारतीय राष्ट्रवाद को साकार रूप देने वाली ताकत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस थी। इनमें सबसे ऊंचा व्यक्तित्व महात्मा गांधी का था जिन्होंने इस राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व किया। न सिर्फ़ आजादी के आन्दोलन में अपनी उत्तुंग योगदान के कारण, बल्कि सबसे ताकतवर साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष का अभिनय तरीका ईजाद करने के कारण महात्मा गांधी अपने जीवनकाल में ही एक किंवदन्ती बन चुके थे। गांधीजी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा शुरू किये गए आन्दोलन दीर्घकालीन और लोकप्रिय थे। बिना सहयोजित हुए उन्होने ब्रिटिशों द्वारा मिली संवैधानिक छूट का सफलतापूवर्क लाभ उठाया। यह एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी विचारधारा वाले लोग शामिल थे। यह लोकतांत्रिक, नागरिक स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष राज्य की कल्पना पर आधारित आंदोलन था। एक अंतराल के बाद कांग्रेस एक व्यापक व्यास पीठ बन गया जिसमें धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी राजनीति का वर्चस्व था। इसका मुख्य उदेश्य औद्योगिक, भूमि सुधार और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र था। लेकिन इस व्यापक मंच के दूसरे पक्ष पर सनातनी तत्वों की छाप थी इसलिये उपरोक्त किसी भी लक्ष्य को पूरी तरह अमल में नहीं लाया जा सका। इसने भारत में चुनाव (जो आगे चलकर वयस्क मताधिकार पर आधारित हुआ) पर आधारित लोकतांत्रिक संस्थाओं के विचार को और एक चुनी हुई सरकार को लोकप्रिय बनाने का काम किया। यह बात तानाशाही सिद्धान्त (उदाहरण एक चालक अनुवर्तिता) पर आधारित साम्प्रदायिक संघटन के विपरीत थी। यह आन्दोलन औद्योगिकीकरण के द्वारा देश के विकास की समझ पर आधारित था। आगे चलकर भूमि सुधार को इसने अपने एजेन्डे में शामिल किया (यह बात यह थी कि इसकी कोई भी नीतियां धार्मिक सोच-विचार पर आधारित नहीं थी। यह बात भी मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के विपरीत थी जिनकी प्राथमिक समझ धार्मिक साम्प्रदायिकता पर आधारित थी) इस आन्दोलन की मुख्य कमी थी जाति और वर्ग के मुद्दे को साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की तुलना में दोयम स्थान देना।

शुरू में हम भारतीय आंदोलन के चरित्र पर एक संक्षिप्त नजर डालेंगे। इस आंदोलन की अगुवाई कांग्रेस द्वारा चलाये गये प्रवाह ने की जो आगे चलकर काफी हद तक महात्मा गांधी के नेतृत्व पर निर्भर हो गया। भारत के बंटवारे और उसके साथ हुए साम्प्रदायिक दंगों के बावजूद यह आंदोलन स्वतंत्र भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्षता को प्रस्थापित करने में सफल रहा। इसने समाज के अनेक अंगों, उदीयमान उद्योगपतियों, आधुनिक व्यवसायियों, उभरते मध्यम वर्ग के तबकों और किसानों के विशाल वर्ग को अपनी तरफ खींचा। 'याचिका राजनीति' के दौर के बाद गांधी जी के आगमन ने इसे एक विशाल जनआन्दोलन में रूपान्तरित कर दिया और अनेक आन्दोलन शुरू हो गये जिसकी पराकाष्ठा अंग्रेजों के पंजों से मुक्ति में हुई। इस जनआन्दोलन के साथ दूसरे अन्य आन्दोलन भी थे जिन्होंने औपनिवेशिक शासन के सामाजिक आधार को काट दिया। इनमें जमींदारी विरोधी आन्दोलन, अछूतों के अधिकारों के संघर्ष और डॉ. अम्बेडकर के अन्य प्रयास थे जिसने औपनिवेशिक शासन के भौतिक आधार को कमज़ोर कर दिया। इसी तरह से मजदूर आंदोलन भी हुए जिसका शुरू में नेतृत्व नारायण मेघाजी लोखंड, कॉ. सिंगरावेलू ने किया और आगे चलकर कम्युनिस्ट पार्टी ने किया। इन आंदोलनों ने भी ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया। भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, अशफाकुल्ला, और सूर्यसेन जैसे दूसरे क्रांतिकारियों ने भी अंग्रेजी आधिपत्य को चुनौती देते हुए आजादी के आन्दोलन में अपना योगदान दिया। स्वतंत्रता आंदोलन में सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद सेना की भूमिका को कम करके नहीं आंका जा सकता। संघर्ष के मैदान में दूसरी तरफ ब्रिटिश महाशक्ति थी जिसे मुस्लिम और हिन्दू सम्प्रदायवादियों (मुस्लिम लीग, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिंदू महासभा) का समर्थन था और स्वतंत्रता आंदोलन में जिनकी मुख्य 'भूमिका' थी अंग्रेजी शासन का भरोसेमंद साथ देना। उनका मुख्य योगदान था आंदोलन की खिल्ली उड़ाना और हर स्तर पर उसका विरोध करना।

इस बात को विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है कि गांधीजी राष्ट्रीय आन्दोलन के सबसे प्रमुख केन्द्रीय नेता थे और उन्होंने आन्दोलन को बड़ी संख्या में किसानों और दूसरे लोगों को इसका हिस्सा बनाने के लिये अनोखे और अभिनव तरीके अपनाये। उनके तरीकों के महत्व को इसी में देखा जा सकता है कि उन्होंने धर्म की गिरफ्त में जकड़े समाज की स्थिति को बड़ी जल्दी समझ लिया। लोगों को पारंपरिक जड़ता से बाहर निकालने के लिये धर्म के मानवीय पहलुओं पर जोर देते हुए उन्होंने धर्म की एक अनोखी व्याख्या की जो किसी एक धर्म की सीमाओं से ऊपर थी और और इस प्रक्रिया में उन्हें लोगों का जबरदस्त साथ मिला। साम्प्रदायिक राजनीति करने वाले लोगों (मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और रा. स्व. संघ) के साथ उनके विवाद की जड़ को ठीक इसी बिन्दु पर देखा जा सकता है। ये सम्प्रदायवादी अपने आप में सबसे ज्यादा ''अधार्मिक'' थे लेकिन वे धर्म का इस्तेमाल अपने सम्प्रदाय के लोगों को दूसरों के खिलाफ एकजुट करने के लिए किया करते थे। उन्होंने गांधीजी के धार्मिक मानवतावाद को अपने लिये गंभीर खतरा समझा। इसी कारण से हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदायवादियों ने उनके खिलाफ ज़हर उगला, उन्हें उन तमाम गड़बड़ियों का, जो खुद उनकी साम्प्रदायिक गतिविधियों के कारण पैदा हुई, ज़िम्मेदार ठहराया, और इसी कारण से हिन्दू साम्प्रदायिक राजनीति के एक नेता ने उनकी हत्या की और इस प्रक्रिया में उसे धर्म पर आधारित राष्ट्रवाद, हिन्दू राष्ट्र के समर्थकों और हिन्दुत्ववादी राजनीति करनेवालों का खुले आम अथवा छिपा समर्थन मिला।

हिन्दू सम्प्रदायवादियों की भूमिका :

1923 से सावरकर ने अपनी राजनीति की दिशा बदल दी और हिन्दुत्व के सिद्धांतों और राजनीति की नींव डाली। इंग्लैंड में सावरकर ने ''फ्री इन्डियन सोसायटी'' का गठन किया जो भारत में अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिये कृत संकल्प थी। उन दिनों वे लन्दन में वकालत पढ़ने गये थे लेकिन उनकी अंग्रेज विरोधी भूमिका के कारण उन्हें बैरिस्टर की पदवी नहीं मिली। उस समय उन्होंने राजनीति में भाग न लेने के ब्रिटिश प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उनके दल ने पेरिस में रूसी क्रांतिकारियों से बम बनाने की कला सीखी। उस दल के एक सदस्य ने लन्दन में इन्डिया ऑफिस के एक उच्च अधिकारी की हत्या कर दी। उसे मृत्युदंड की सजा मिली। इस

आरोप तथा अन्य कई आरोपों के तहत सावरकर को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें कारावास की सज़ा सुनाई गयी। इन्हें सजा के लिये इंग्लैंड से रवाना किया गया। उन्हें ले जाने वाला जहाज मार्सेलिस में रुका, जहां पर वे समुद्र में कूद गये और राजनैतिक शरण मांगने के लिये तैरकर फ्रांस की जमीन पर आये। उन्हें फिर से पकड़ लिया गया और आजीवन कारावास के लिये उन्हें अण्डमान भेज दिया गया। जेल के जीवन ने उनकी हिम्मत को तोड़ दिया। 1920 से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उनकी बिना शर्त रिहाई की मांग कर रही थी लेकिन सावरकर ने लिखित माफीनामा लिखना पसंद किया जो एक तरह से पूर्ण आत्मसमर्पण था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को अपने पत्र में लिखा, ''स्वीकार करता हूं कि मुझे उचित न्याय और सजा मिली। मैं बीते दिनों में अपनाये गये हिंसा के तरीकों से तहे दिल से नफरत करने लगा हूं और मैं अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता से (ब्रिटिश) संविधान और कानून का पालन करना अपना कर्तव्य समझता हूं और यदि मुझे भविष्य में मौका दिया जाय तो मैं सुधार में पूरी तरह मदद दूंगा।'' (ब्रिटिश अधिकारियों को भेजे गये पत्र से - फ्रंटलाइन 7 अप्रैल 1995 पृष्ठ 94 से) इनके द्वारा बताये गये सुधार यानी 1919 में मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड के प्रस्ताव थे जिन्हें राष्ट्रवादी आन्दोलन ने ठुकरा दिया था।

इस प्रस्ताव पर एक सौदे में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें इस शर्त पर छोड़ा कि वे बम्बई प्रांत के रत्नागिरि जिले में ही रहेंगे और जिले से बाहर जाने के लिए उन्हें सरकार से इजाजत लेनी पड़ेगी। इसके अलावा वे सरकार की अनुमति के बिना किसी भी सार्वजनिक या व्यक्तिगत राजनैतिक गतिविधि में हिस्सा नहीं लेंगे। शर्तों को माफ कर दिया। वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के रूप में काम करने लगे।

सावरकर द्वारा पूर्ण आत्मसमर्पण की बात को हिन्दुत्व वाले एकदम छिपा जाते हैं और उन्हें 'वीर' सावरकर की उपाधि से सम्मानित करते हैं। ब्रिटिश हुकूमत ने उन्हें क्यों छोड़ा? ऐसा कैसे हो गया कि छूटने के बाद उनकी राजनैतिक दिशा एकदम से बदल गयी और उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्र' विचारधारा के लबादे को ओढ़ लिया? ऐसा कैसे हुआ कि उन्होंने 'भारत छोड़ो' जैसे प्रमुख आन्दोलन में कभी भी ब्रिटिश विरोधी आंदोलन शुरू क्यों नहीं किया? ऐसा कैसे हो गया कि स्वतंत्रता आन्दोलन का एक हिस्सा बनने के बजाय उन्होंने भारतीयों को ब्रिटिश सेना में भर्ती होने में मदद करना पसंद किया? इस पर हर किसी का अपना - अनुमान हो सकता है। लेकिन वे हिन्दू महासभा के निर्विवाद नेता के रूप में उभरे। उनको छोड़ने के पीछे अंग्रेजों का जो समीकरण था वह उनकी ब्रिटिश समर्थक और गांधी भूमिका ने सही-साबित किया और वे स्वेच्छा से ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की 'बांटो और राज्य करो' की नीति के सह अपराधी बने। दुबे और रामकृष्णन ने (फ्रन्टलाईन-वही) में इस पर लिखा ''क्या यह संभव है कि ब्रिटिश सरकार एक कांग्रेस विरोधी साधन के रूप में सावरकर का उपयोग कर रही थी। उन्हें एक 'हिंदू जिन्ना' की तलाश थी जो उनकी बांटो और राज करो की नीति को प्रभावशाली ढंग से अमल में लाने में उनकी मदद करे? 1920 और 1930 के दशक में कांग्रेस और भारतीय जनता के निर्विवाद नेता महात्मा गांधी की किसी भी व्यक्ति ने खिल्ली उड़ाने और फटकारने की निकृष्टता नहीं की लेकिन सावरकर ने यह काम किया।

1937 के बाद उनका ज्यादातर समय गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन का घोर विरोध करने में बीता। इसकी सबसे बेहतर मिसाल है 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन जब गांधीजी ने लोगों को सरकारी नौकरियां छोड़ने का आह्वान किया तो सावरकार ने यह फरमान जारी किया, ''मैं सरकारी नौकरियों में काम करने वाले या उच्च पदासीन हिन्दू संगठनकर्मियों को सख्त हिदायत देता हूं कि वे अपने काम पर लगे रहें और अपनी नियमित ड्यूटी करते रहें'' (ए.जी. नूरानी, फ्रंटलाईन, 1, दिसंबर 1995)। इसके अलावा हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी समिति ने 31 अगस्त 1942 को एक प्रस्ताव पास कर सभी महासभाइयों को उनके काम में डटे रहने का आदेश दिया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मामले में संघ परिवार का दावा है कि उन्होंने ''राष्ट्र निर्माण'' की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसका जो भी मतलब हो, जहां पर भा.ज.पा. शासित राज्यों के स्कूलों में इतिहास की किताबों में हिन्दुत्व के अनुयायियों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में किये गये योगदान के बारे में 'खोज करके' बड़े विस्तार से बताया गया है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान डॉ. हेडगेवार खुद जेल गये थे। वास्तविकता यह है कि हेडगेवार थोड़े समय के लिये सत्याग्रह में शामिल हुए और बहुत थोड़े समय के लिए उन्हें जेल हुई थी, लेकिन कुल मिलाकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता की दिशा में हो रहे आंदोलन का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिये कोई अर्थ नहीं था।

एक स्तंभकार लाजपत राय के अनुसार एक संगठन के रूप में रा. स्व. संघ कभी भी ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का हिस्सा नहीं था और हेडगेवार ने भी 1931 के बाद से इस आंदोलन से अपने आपको अलग कर लिया और वे फिर कभी भी किसी राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा नहीं बने। इसके बाद से डॉ. हेडगवार का राष्ट्रीय आंदोलन से सैद्धांतिक अलगाव पूरा हो गया और वे स्वतंत्रता आंदोलन से हमेशा अलग रहे (टाईम्स ऑफ इंडिया में एक पत्र - 18 जन. '94) इस गैर/सहभागिता के सिद्धांत की रचना गोलवलकर ने की, जिनके मुताबिक अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना एक प्रतिक्रियावादी कदम था और उन्होंने कांग्रेस पर राष्ट्रीय संघर्ष को 'महज' ब्रिटिश विरोधी आंदोलन में बदलने का आरोप लगाया। गोलवलकर लिखते हैं, 'देशभक्ति और राष्ट्रवाद को ब्रिटिश विरोध के साथ जोड़ना एक प्रतिक्रियावादी गतिविधि है जिसका विनाशकारी परिणाम स्वतंत्रता आंदोलन की समूची प्रक्रिया पर, उसके नेताओं पर और आम जनता पर पड़ता है'' (गोलवलकर 1966)। निश्चित ही इस तरह की सैद्धांतिक सोच वाले संघ परिवार ने अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष नहीं किया और न वे कर सकते थे। रा. स्व. संघ ने अपने 'राष्ट्रवाद' को मुसलमानों के खिलाफ इस्तेमाल किया और इसलिये वे राष्ट्रीय नेतृत्व के विरोध में ''मुस्लिम तुष्टिकरण'' का राग अलापते रहे। हिन्दू महासभा और रा. स्व. संघ ने खुद को नौसेना विद्रोह से भी अलग रखा क्योंकि विद्रोहियों ने अंग्रेजों के खिलाफ बन्दूक चलायी जबकि संघ परिवार की नजर में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना 'अनर्थकारी' और 'प्रतिक्रियावादी' काम था (लाजपत राय - वही)

एन्डरसन और दामले (ब्रदरहुड इन सैफ्रन) ने इंगित किया है कि, ''गोलवलकर का मानना था कि रा. स्व. संघ पर पाबन्दी के लिये अंग्रेजों को कोई अवसर नहीं देना चाहिये। 29 अप्रैल 1943 को एक सर्कुलर वितरित किया गया कि, ''अपने काम को कानून के दायरे में ही रखने के लिये हम सरकारी हुक्म के मुताबिक सैनिक कवायद और गणवेश को बन्द कर रहे हैं, जैसा कि हर आज्ञाकारी संस्था को करना चाहिये ....'' (ए.जी. नूरानी, फ्रंटाईन, 1 दिसम्बर 1995 से उद्धृत)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और स्वतंत्रता आंदोलन का वर्णन निश्चित ही संक्षिप्त है क्योंकि किसी 'अघटित घटना' का वर्णन एक हद तक ही किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि जहां तक स्वतंत्रता आंदोलन का सवाल है रा. स्व. संघ जानबूझ कर न सिर्फ इससे अलग रहा बल्कि वह विपरीत कोण से काम करके विभिन्न आंदोलनों का विरोध कर रहा था। एक सांप्रदायिक संगठन होने के नाते भी हिन्दू तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता द्वारा एक दूसरे को मजबूत करने की प्रक्रिया में उसने भाग लिया।

भा.ज.पा. के नेतृत्व वाली साझा सरकार के मौजूदा (1998-99) प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन में ''सहभागी'' होने के बारे में बहुत कहा जाता है। यह तब की बात है जब वाजपेयी रा.स्व. संघ के नये कार्यकर्ता थे। संघ परिवार के लिये समर्थन जुटाने और

अनिवासी भारतीयों को शामिल करने के लिये इंटरनेट पर आये हुए एक लेख में (जो अखबारों में भी छपा) वे कहते हैं, ''जब मैंने '' हिन्दू तन-मन, हिन्दू जीवन'' लिखा तब मैं कक्षा 10 का विद्यार्थी था। 1947 तक मैंने शाखा स्तर पर रा. स्व. संघ का काम किया .....मैंने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी हिस्सा लिया और जेल गया। उस वक्त मैं इन्टरमीडिएट की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। मुझे आगरा जिले में मेरे गांव बटेश्वर में गिरफ्तार किया गया।'' उनके इस दावे की विस्तृत जांच की गयी और इसके निष्कर्ष फ्रन्टलाईन पत्रिका के 20 फरवरी 1998 के अंक में प्रकाशित हुए (मानिनी चटर्जी और वी.के. रामचन्द्रन) इस जांच ने उनके द्वारा 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लेने के झूठ का पर्दाफाश कर दिया। बटेश्वर कांड में उनकी भूमिका के बारे में काफी विवाद हुआ है। उन्होंने यह स्वीकार करते हुए कि सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाली भीड़ में वे केवल एक दर्शक थे, अदालत में बयान दिया, जिससे उन्हें जेल से छूटने में मदद मिली। जैसा कि पहले बताया गया है कि रा. स्व. संघ के समर्पित और सक्रिय सदस्य थे, उनके खुद के बयान के अनुसार उन्होंने आंदोलन में हिस्सा नहीं लिया (फ्रंटलाइन 20 फरवरी) अपने बयान के अनुसार उन्होंने बहाने बनाते हुए कहा कि, ''अपने भाई के साथ मैं भीड़ के पीछे-पीछे गया, मैंने किसी चीज का कोई नुकसान नहीं किया। सरकारी इमारत को नुकसान पहुंचाने में मैंने कोई मदद नहीं की।'' उनके बयान से घटना का सही विवरण मिलता है जिसके आधार पर मुकदमा चलाया गया। उसमें निदर्शनकारियों के दो नेताओं ककुआ उर्फ लीलाधर तथा महुअन के भी नाम थे जिनपर मुकदमा चला। लीलाधर के अनुसार, ''अटल बिहारी का बयान कोर्ट की गवाही का हिस्सा नहीं था जिससे उनको सजा मिलती, लेकिन इससे मुकदमे की जांच करने में मदद अवश्य मिली ... मुकदमा ज्यादातर अटलबिहारी के बयान पर ही
आधारित था। तो यह थी ''हिन्दू तन मन हिन्दू जीवन'' के ''देशभक्त'' लेखक की स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका!

गोडसे द्वारा गान्धीजी की हत्या : भारतीय राष्ट्रवाद पर हिन्दुत्व का आक्रमण

अब तक हमने यह देखा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू महासभा के अनुयायी स्वतंत्रता आन्दोलन से अलग रहे और सभी निर्णायक अवसरों पर उन्होंने अंग्रजों का साथ दिया। हिन्दू राष्ट्र के अनुयायी दो भागों में बटे थे। एक भाग हिन्दू महासभा का समर्थक था जो (हिन्दू साम्प्रदायिक राजनीति को ध्वजा-वाहक के रूप में) राजनीति में तुरन्त भाग लेने में रखता था।

दूसरा रा.स्व. संघ का समर्थक था (जो देशभर में स्वयंसेवकों का जाल बिछाने पर ध्यान देना चाहता था ताकि वह समाज में निर्णायक स्तर पर दखल देते हुए अपने विचारों को प्रसारित कर सके) वह ऐसे लोगों को तैयार करना चाहता था जो ब्रिटिशों के चले जाने के बाद आने वाले ''वास्तविक संघर्ष'' के समय हिन्दू राजनीति के लिये अधिक उपयोगी हों। इसके अलावा वह साम्प्रदायिक जहर का भी प्रसार कर रहा था। हिन्दुत्व की राजनीति के इन दोनों अंगों का एक ही लक्ष्य था - हिन्दू राष्ट्र। हिन्दू महासभा तात्कालिक राजनीति के लिये काम कर रही थी और रा. स्व. संघ लम्बी लड़ाई की तैयारी कर रहा था। उनके लक्ष्य एक थे, उनका सामाजिक आधार समान था, उनके प्रमुख मूल ग्रंथ एक थे लेकिन उनके तौर-तरीके अलग-अलग थे। गांधीजी का हत्यारा नाथूराम गोडसे इन दोनों प्रवाहों के समन्वय का अनोखा उदाहरण था।

गांधीजी की हत्या के बाद रा. स्व. संघ के लोग अधिकृत रूप से यह कहने लगे कि हमें गोडसे से कुछ लेना देना नहीं है और वह रा. स्व. संघ का सदस्य नहीं। वे ऐसा कभी भी कह सकते हैं क्योंकि रा. स्व. संघ के सदस्यों का अधिकृत रिकॉर्ड नहीं था। गोडसे 1930 में रा. स्व. संघ में शामिल हुआ और जल्द ही वह बौद्धिक प्रचारक बन गया। हिन्दू महासभा और रा. स्व. संघ की तरह वह भी अखण्ड भारत का कट्टर समर्थक था, अविभाजित भारत जिसमें आज के पाकिस्तान, बांग्लादेश और म्यांमार शामिल हैं। ''हिंदुओं के उत्थान के लिये काम करते समय मुझे लगा कि हिन्दुओं के अधिकारों की रक्षा के लिये देश की राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेना जरूरी है'' (गोडसे - ''मैने महात्मा गांधी की हत्या क्यों की'' 1993, पृष्ठ 102)

एक कट्टर हिन्दुत्ववादी होने के नाते वह गांधीजी की अहिंसा और उनके नेतृत्व वाले आन्दोलनों का घोर आलोचक था और उनके बारे में बहुत ओछे विचार रखता था और उनके मूल्यांकन के मापदंड भी बड़े अजीब थे। ''उनके अनुयायी वह नहीं देख सकते जो कि एक अन्धा भी देख सकता है कि शिवाजी, राणाप्रताप और गुरु गोविन्द सिंह की तुलना में गांधी महज एक बौना था'' (वही पृष्ठ 40) और स्वराज और स्वतंत्रता पाने के मामले में गांधीजी का योगदान मामूली था'' (वही पृष्ठ 87)

उसने मुसलमानों के तुष्टीकरण और इसलिये पाकिस्तान के गठन के लिये महात्मा गांधी को जिम्मेदार ठहराया। वह उस समय हिन्दुओं की एक मात्र पार्टी हिन्दू महासभा में शामिल हो गया और उसके पुणे शाखा का महामंत्री बन गया। आगे चलकर उसने बतौर संस्थापक-संपादक ''अग्रणी हिंदूराष्ट्र'' नाम की पत्रिका शुरू की। जगन फडणीस अपनी किताब ''महात्म्याची अखेर'' (लोक वाड.मय गृह, 1994) में कहते हैं कि गांधीजी की हत्या उनके द्वारा प्रचारित विभाजन तथा पाकिस्तान को 55 करोड़ देने के आरोप पर नहीं हुई बल्कि गांधीजी की सामाजिक और हिन्दू राष्ट्र के अनुयायियों के मूलभूत गहरे मतभेदों के कारण हुई। लेकिन इसके लिये उपर्युक्त दो कारणों को ही बहाना बनाया गया है।

उसके भाई गोपाल गोडसे ने, जो हत्या का सह-अपराधी था, वास्तविक कारण और नाथूराम की रा. स्व. संघ की सदस्यता के बारे में ''टाइम्स ऑफ इंडिया'' (25 जन. 98) को दिये गये एक इंटरव्यू में बताया कि, ''उनकी तुष्टीकरण की नीतियां और उनको कांग्रेस की सरकारों पर लादे जाने से मुस्लिम अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला जिसके कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ। तकनीकी रूप से और सैद्धांतिक रूप से नाथूराम रा. स्व. संघ का सदस्य था लेकिन आगे चलकर उसने इसके लिये काम करना बन्द कर दिया। कोर्ट में उसका बयान कि उसने रा. स्व. संघ छोड़ दिया है यह रा. स्व. संघ के कार्यकर्ताओं को हत्या के बाद जेल जाने से बचाने के लिये दिया गया था ऐसा उसने बड़ी खुशी से इस समझ पर किया कि उसके द्वारा खुद को रा. स्व. संघ से अलग बताने पर रा. स्व. संघ को ही लाभ मिलेगा।''

इस हत्या की भावना हिन्दुत्व राजनीति के दोनों प्रवाहों रा. स्व. संघ और हिन्दू महासभा में घुली थी। उसका ''हिन्दू राष्ट्र'' का सम्पादन करना भी प्रतीकात्मक था। इस हत्या को हिन्दू महासभा और रा. स्व. संघ के अनुयायियों का व्यापक समर्थन प्राप्त था जिसके चलते गांधीजी की हत्या के बाद उन लोगों ने मिठाइयां बांट कर आनन्द मनाया ''इन सभी (रा. स्व. संघ) नेताओं के भाषण जहर से भरे थे। इस जहरीले वातारण के कारण ऐसी जघन्य घटना संभव हो सकी। रा. स्व. संघ के लोगों ने गांधीजी की हत्या कर मिठाई बांटकर आनन्द व्यक्त किया'' (सरदार पटेल द्वारा एम. एस. गोलवलकर और श्यामाप्रसाद मुखर्जी को लिखे गये पत्र का अंश, ऑनलुकर 27 अप्रैल 1998)

गोडसे कोई सनकी नहीं था। जिस तरह से हिन्दू साम्प्रदायिक गांधीजी के खिलाफ जहर उगल रहे थे, ऐसी राजनीति का ऐसा हश्र होना ही था। रा. स्व. संघ और हिन्दू महासभा दोनों से शिक्षा पाया हुआ गोडसे इस काम को करने के लिये 'उपयुक्त'

व्यक्ति था। उन्होंने हत्या के लिये 'वध' शब्द का इस्तेमाल किया है जो कि समाज विरोधी राक्षस को मिटाने में प्रयुक्त होता है। इस तरह से यह हिन्दुत्व राजनीति का भारतीय राष्ट्रवाद पर पहला प्रमुख प्रहार था, एक तरह से आनेवाले समय का हिन्दुत्व राजनीति के लिये यह एक लम्बी छलांग थी। हालांकि संघ परिवार अधिकृत तौर पर अपने आपको गोडसे द्वारा गांधीजी की हत्या से अलग कहता है, लेकिन निजी तौर पर इसके कई सदस्य न केवल इस जघन्य कार्य का समर्थन करते हैं, बल्कि वे गांधीजी के महत्व को नकारने तथा गोडसे की महत्ता बढ़ाने के प्रयास में सफल भी हुए हैं। इस तरह की जटिल चालाकी केवल बहुमुखी संगठन ही कर सकता है जो सभी मुख से एक ही समय में अलग - अलग भाषा बोलता हो।

लोकतांत्रिक भारत या हिन्दूराष्ट्र, रामपुनियानी से साभार

यू.पी.ए सरकार की दुविधा

- डॉ. योगेश भटनागर

लोकसभा के चुनावों के बाद कांग्रेस और उसकी सहयोगी पार्टियों को अपना नाम यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलायंस रखने में न तो कोई देर लगी और न ही झिझक हुई। यह अब स्वाभाविक तौर पर अपने आप नामकरण हो गया। इसमें 'प्रोग्रेसिव' शब्द का इस्तेमाल साफ तौर पर ये बताने के लिये किया गया कि मध्यमार्गी वामपंथी नीतियों के माध्यम से सामाजिक विकास और आर्थिक सुधारों की गति तेज की जायेगी। इस गठबंधन से ये कोई बहुत बड़ी अपेक्षा भी नहीं है। राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम जो बाद में बना जिसमें धर्मनिरपेक्षता, बहुलतावाद, सामाजिक न्याय और समानता के साथ-साथ एक स्वतंत्र विदेशी नीति पर जोर दिया गया वो ऊपर बताई अपेक्षा के अनुरूप था। राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम में सामाजिक क्षेत्रों में विनिवेश बढ़ाने, रोजगार गारन्टी की योजना में सुधार करने के वादे किये। इस राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वामपंथियों का भी अपना पुट था जिनके सांसदों की संख्या 60 से ऊपर है। यह स्वाभाविक था कि यू.पी.ए. के प्रोग्राम में हिंदुत्ववादी ताकतों को कमजोर करने और दलितों, गरीबों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों के प्रति संवेदनशील नीतियों को अपनाने पर जोर होगा।

आज छः महीने बाद अगर राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम का अवलोकन करें तो हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि इस प्रोग्राम को पूरी तरह अमल में नहीं लाया जा रहा है। सामाजिक क्षेत्रों में विनिवेश वायदे के मुताबिक कुछ ज़्यादा नही बढ़ाया गया है। ये कुल 10,000 करोड़ रुपये या देश के सकल घरेलू उत्पाद का सिर्फ 0.4 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम ने ऐसी सभी कट्टरपंथी और रूढ़िवादी ताकतों के खिलाफ लड़ाई का ऐलान किया था जिनका उद्देश्य शांति और समन्वय को भंग करना रहा है। यू.पी.ए. सरकार ने गुजरात जनसंहार के पीड़ित लोगों को आज तक कोई मुआवज़ा नहीं दिया है। गुजरात जनसंहार भारत के स्वतंत्रयोत्तर इतिहास का सबसे भयानक अध्याय है जिसमें हजारों लोग साम्प्रदायिकता और कट्टरवादिता के शिकार हुए। यू.पी.ए. जानती है कि आज भी गुजरात जनसंहार से प्रभावित एक लाख लोग हैं जिन्हें मदद की ज़रूरत है। यू.पी.ए. ने अब तक उन लोगों के लिये रोटी, कपड़े और मकान की कोई व्यवस्था नहीं की है न ही अल्पसंख्यकों के बच्चों के लिये नये स्कूल खोले हैं। सुप्रीम कोर्ट के कुछ फैसलों ने ज़रूर पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिये कुछ मामले गुजरात से बाहर सुनवाई करने के आदेश दिये हैं। धर्मनिरपेक्ष सरकार के प्रधानमंत्री के देश के नाम पहले संदेश में गुजरात जनसंहार के बारे में संवेदना का एक शब्द तक न होना ये कोई मामूली भूल नहीं है। इस संदेश से ऐसा लगता है कि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. की बहुतांश पार्टियां हिंदुत्व के प्रति नर्म रूख रखना चाहतीं है, उनसे लड़ना नहीं चाहतीं। ये कोई ताज्जुब की बात नहीं है क्योंकि 2002 के गुजरात विधानसभा के चुनावों के दौरान 'नर्म हिंदुत्ववादी' ताकतें आज कांग्रेस पार्टी के केंद्रीय समितियों में हैं। नतीजा ये ताकतें सरकार को संस्कृति, प्रचार और प्रसार, और विदेश नीति में हिंदुत्ववादी ताकतों से खुले तौर पर लड़ने नहीं दे रही है।

'पोटा' पर किये गये वायदे पूरे नहीं किये गये हैं। संशोधित क़ानून में 'पोटा' की कई भयानक धाराएं आज भी वैसी की वैसी हैं। मणिपुर में चल रहे आंदोलन के प्रति यू.पी.ए. सरकार की भूमिका बहुत ही असंवेदनशील और गैर संजीदा है। अयोध्या मामले में कोर्ट द्वारा आडवाणी और दूसरे अभियुक्तों को बरी कर देने के खिलाफ सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया है। यू.पी.ए. सरकार गुजरात जनसंहार, सिक्योरिटीज स्कैम, पेट्रोल पम्पों का आवंटन, संतूर होटल की कौड़ियों के दाम में बिक्री, कारगिल में जासूसी और खुफिया एजेन्सियों की घुसपैठ के बारे में सही समय पर खबर न देने, ताबूत घोटाला, तहलका और यू.टी.आई द्वारा 5 मिलियन लोगों की बचत का पानी में जाना, इन सब की तरफ यू.पी.ए. सरकार कोई ध्यान नहीं दे रही है। यह बात सच है कि यूपीए सरकार ने अभी तक किसी समस्या का हल नहीं खोजा है। या यूं कहें कि समस्या को टाला है या उसे कालीन के नीचे दबा दिया है। पंजाब के पानी के बंटवारे की समस्या का समाधान सुप्रीमकोर्ट पर छोड़ दिया है। बेरोजगारी की समस्या पर अभी तक वादे ही किये हैं। रोजगार गारन्टी योजना के बारे में जो बिल पेश किया गया है उसमें काफी ज्यादा कमियां हैं। कीमतें बढ़ रही हैं और श्रमिक संगठनों के अधिकार, जैसे हड़ताल का, कम किये जा रहे हैं।

विदेश नीति के क्षेत्र में भी यू.पी.ए. सरकार अपनी स्वतंत्र विदेश नीति नहीं बना पायी है। इराक पर काबिज़ फौजों के हमले और कब्ज़े के औचित्य और वैधता पर प्रधानमंत्री ने लंदन में टोनी ब्लेयर के सामने पूछे गये सवाल पर सिर्फ ये कहा कि इराक पर हमला और कब्ज़ा भूतकाल की बात हो गयी है 'हमें भविष्य की ओर देखना चाहिये।' प्रधानमंत्री जान बूझकर ये भूल गये कि इराक पर हमला और कब्ज़ा गैरकानूनी ही नहीं अंतराष्ट्रीय कानूनों के खिलाफ भी है। मनमोहन सिंह सरकार ने संयुक्त राष्ट्र परिषद् के प्रस्ताव 1546 पर पूरी तरह सहमति दिखाकर इराक में काबिज़ फौजों के रहते हुए भी संप्रभुता की स्थापना को स्वीकार कर लिया है जबकि कुछ ही दिन पहले यही सरकार इसको इस दिशा में पहला कदम भर मानती थी। इससे इराक में भारतीय सेना भेजने की भूमिका तैयार हो जाती है जो अपने आप में भारतीय विदेश नीति के असूलों के खिलाफ है। पाकिस्तान के साथ सबन्धों में भी इसकी अपनी कोई मौलिक पहल नहीं है बल्कि अमरीका के दबाव के तहत 'एक कदम पीछे एक कदम आगे' की नीति अपनायी जा रही है। यही हालत भारत-चीन सबन्धों के बारे में है।

शेष पृष्ठ 16 पर .....

झूठे जग पतियाना

भा.ज.पा.-घर वापसी
यथार्थ या भ्रम

-डॉ. योगेश भटनागर

लोकसभा चुनावों को हुए छह महीने ही हुए हैं और इस बीच महाराष्ट्र के विधानसभा चुनाव भी पूरे हो गये हैं। लोकसभा चुनावों में 300 सीटें अपने दम पर जीतने वाली भारतीय जनता पार्टी ही नहीं राजग गठबंधन में बँधी पार्टियों की भी अप्रत्याशित और अनपेक्षित हार हुई। वही हाल महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों में भारतीय जनता पार्टी-शिवसेना गठबंधन का हुआ। इन छह महीनों में भारतीय जनता पार्टी ने अपनी चुनावी हार का विश्लेषण करने के लिये पहले मुम्बई और बाद में गोवा में 'चिन्तन बैठकें' कीं और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अगर भारतीय जनता पार्टी को चुनावों में जीतना है तो उसे उच्चजातीय और उच्चवर्णीयों को दोबारा अपनी तरफ लाना होगा और वो हो सकता है सिर्फ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, भारतीयता या हिंदुत्ववाद यानी राम मंदिर, धारा 370 और समान नागरिक संहिता पर वापस जाकर। दूसरे लफ्ज़ों में आर.एस.एस. और संघ परिवार के दूसरे घटकों विहिप, बजरंगदल की राजनीति करके ही भारतीय जनता पार्टी अपनी सीटों की पुरानी संख्या पर जा सकती है। इसी निष्कर्ष का दूसरा नतीजा है वेंकैया नायडू का पार्टी की अध्यक्षता से राजीनामा और आडवाणी को अध्यक्ष बनाना। ऐसा नहीं है कि नायडू भारतीय जनता पार्टी के गैर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ या उदारवादी अध्यक्ष थे। असली बात थी भा.ज.पा. के दो शीर्ष नेता वाजपेयी और आडवाणी गैर हिंदी भाषी को अब पार्टी का नेता मानने को तैयार नहीं थे और पार्टी का मानना है कि दूसरी कतार के हिंदी भाषी नेताओं में भारतीय जनता पार्टी की हिंदुत्ववादी और कट्टरपंथी सांप्रदायिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता उतनी गहरी नहीं है जितनी कि वाजपेयी और आडवाणी की है। भारतीय जनता पार्टी की एक और समझ भी रही है और वो ये कि अगर उसे सत्ता में आना है तो यू.पी. में अपनी सीटें बढ़ानी होंगी और इसी राजनीति के तहत बाबरी मस्जिद का विध्वंस और सांप्रदायिक दंगे यू.पी. में ये पार्टी करवाती रही। 1991, 1996, 1998 में भारतीय जनता पार्टी ने यू.पी. में 50 सीटें जीती थीं। 1999 में यह संख्या घटकर 29 पर चली गयी (इसमें से अब चार सीटें उत्तरांचल में चली गयी हैं) और 2004 में यह संख्या घटकर सिर्फ 12 पर आ गयी है। यू.पी. के 12 के आंकड़े ने भा.ज.पा. को आडवाणी जैसे कट्टरपंथी सांप्रदायिक नेता को पार्टी का अध्यक्ष बनाने पर मजबूर किया है। भा.ज.पा. की सोच है कि पार्टी को अस्तित्वहीनता से बचाने के लिये अपने मूल मतदाताओं, (कोर कॉंस्टीच्यून्सी) को घर वापस लाना होगा। जहाँ तक आर.एस.एस. का सवाल है इसने पहले ही दिशा सुधारने (कोर्स करेक्शन) के आदेश दे दिये थे। उसके जवाब में आडवाणी दशहरे पर नागपुर में अपनी हाजिरी लगाकर आये और अध्यक्ष बनने के बाद कई बार भा.ज.पा. के हिंदुत्ववाद को कई तरह से परिभाषित कर चुके हैं। मिसाल के तौर पर कभी राष्ट्रवाद, कभी भारतीयता तो कभी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। वैसे अटल बिहारी वाजपेयी का कहना है कि हिंदुत्व और भारतीयता में कोई फर्क नहीं है और यह मीडिया है जो इनमें अन्तर की बात करता है। साथ ही आडवाणी यह भी कह चुके हैं कि भा.ज.पा. संघ परिवार का हिस्सा थी और है और वो पहले भी स्वयं सेवक थे और आज भी हैं। पिछले छः सालों में भा.ज.पा. - रा.ज.ग. सरकार में 182 बनाम 82 की राजनीति की वजह से मीडिया और प्रेस द्वारा रचित तथाकथित उदारवादी चेहरा प्रधानमंत्री बना रहा। ये बात याद दिलाने लायक है कि इस चेहरे ने कई बार कहा कि वो आर.एस.एस. से जुड़ा हुआ है और आज भी स्वयं सेवक है। ये चेहरा आर.एस.एस. की तर्ज़ पर हर मुद्दे पर अपने बयान बदलता रहा, वापिस लेता रहा या नकारता रहा। यह बात ध्यान देने लायक है कि गोवा की चिन्तन बैठक के बाद भा.ज.पा. ने जो क्षेत्रीय प्रभारी नियुक्त किये हैं वो सभी आर.एस.एस. के प्रचारक हैं : राम प्यारे पान्डे : देहली, हरियाणा और चंडीगढ़, प्रसन्न मिश्रा : उड़ीसा, और प.बंगाल, मुकुन्दन : तमिलनाडू और केरल, सौदान सिंह : आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ वेणुगोपाल रेड्डी : पांडेचरी, अंडमान और लक्षद्वीप। रांची में हुई राष्ट्रीय परिषद् में प्रभारियों में फेर बदल किया गया है वे सब भी आर.एस.एस. से जुड़े हैं। भारतीय जनता पार्टी अपनी राँची की राष्ट्रीय परिषद् के बाद इतनी विश्वास विहिन हो चुकी है कि लोकसभा चुनावों के दौरान वाजपेयी बनाम प्रश्नचिन्ह, स्वदेशी बनाम विदेशी, अनुभव बनाम अनुभवहीन, और अटलबिहारी बनाम प्रश्नचिन्ह का प्रचार करने वाली भा.ज.पा. ने तय किया है कि झारखंड और बिहार चुनावों में किसी को भी मुख्यमंत्री के रूप में प्रोजेक्ट नहीं करेगी।

मीडिया और प्रेस ने ये बताने की कोशिश की कि भा.ज.पा. की 'चिन्तन बैठक' में उदारवादी नेताओं के रुझान की जीत हुई पर ये सरासर गलत है। भा.ज.पा. की यह बात समझ में आ गयी है कि वो अपने दम पर 300 सीटें कभी नहीं जीत सकती इसलिये रा.ज.ग. का मौजूदा स्वरूप बरकरार रखने के लिये उदारवाद की बात करनी जरूरी है। देखा जाये तो आज तक रा.ज.ग. की पाटियां भी सांप्रदायिक हो चुकी हैं। ऐसी कोई मिसाल याद नहीं आती जब भा.ज.पा. की इन सहयोगी पार्टियों ने भा.ज.पा. के हिंदुत्व और सांप्रदायिक एजेंडे को समर्थन न दिया हो वो चाहे गुजरात जनसंहार हो या फिर कोई और सांप्रदायिकता भड़काने वाली हरकत। 15 नवम्बर को रा.ज.ग. की राष्ट्रीय परिषद ने यह फैसला लिया कि अयोध्या विवाद को अब संवाद से हल करेंगें। भा.ज.पा. अब अपने स्टैण्ड से मुकर गयी है और इसका मतलब है कि भा.ज.पा. को न्याय प्रणाली में विश्वास नहीं है। दूसरी बात भा.ज.पा. का 'दस पाइन्ट' प्रोग्राम न तो अपनी हार का विश्लेषण है और न ही अपने आप में कोई बदलाव का इशारा। सच कहा जाये तो भा.ज.पा. ने न तो अपना हिंदुत्व कभी छोड़ा था और न ही अपनी कट्टरपंथिता और न ही सांप्रदायिकता। भा.ज.पा. की अपनी हार इसलिये नहीं हुई कि उसने हिंदुत्ववादी विचारधारा छोड़ दी थी, बल्कि इसलिये हुई क्योंकि उसने मीडिया और प्रेस के जरिये 'इंडिया शाइनिंग' और 'भारत उदय यात्रा' जैसे झूठ और भ्रम पर आधरित प्रचार किये। वही भा.ज.पा. जो पाँच महीने पहले बिजली, सड़क और पानी जैसे मुद्दों को उठाकर म.प्र., छत्तीसगढ़, और राजस्थान में चुनाव जीती थी वही भा.ज.पा. शिवसेना के साथ ऐसे ही मुद्दों को उठाने के बाद भी महाराष्ट्र में चुनाव हारी। इसका मतलब साफ है कि भारतीय मतदाता भा.ज.पा. की असलियत समझ गया है और ये भी कि ये पार्टी विकास और प्रगति में विश्वास नहीं रखती और दोहरी बात करती है। आज भी ये पार्टी सांप्रदायिक, कट्टरपंथी और फासीवादी है। भारतीय मतदाता ये समझ चुका है। भा.ज.पा. का नरम हिंदुत्व या उदारवादी चेहरा है ही नहीं। इसका एक सबूत है उ.प्र. में हिंदुत्व विचारधारा के गढ़ माने जाने वाले वाराणसी, मथुरा, और फैजाबाद (जहाँ अयोध्या है) में भा.ज.पा. और राम मंदिर के चैम्पियन विनय कटियार और स्वामी चिन्मयानन्द की हार।

'घर वापसी' की बात करने वाली भा.ज.पा. आज भी वैसी ही है जैसी थी। मतलब लोकतंत्र विरोधी, संविधान में विश्वास न रखने वाली, सांप्रदायिक, कट्टरपंथी और फासीवादी पार्टी थी, है और रहेगी यह बात साफ समझ लेनी चाहिये। जब ये पार्टी सत्ता में थी तब भी इसने राष्ट्रपति, चुनाव आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और आडिटर एंड कम्पट्रोलर जनरल के पदों को कभी सम्मान नहीं दिया। चुनावी हार के बाद तो भा.ज.पा. आज स्वनकार (डिनायल) की अवस्था में है। यह स्वभाविक है क्योंकि पिछले 6 सालों में इस पार्टी को कई टी.वी. चैनलों और कुछ प्रेस ने एक उदारवादी पार्टी के रूप में पेश किया और फिर करीब-करीब सारे मीडिया और प्रेस ने इसे दक्षिणपंथी उदारवादी पार्टी के रूप में पेश करना शुरू कर दिया। इसी

मीडिया और प्रेस ने वाजपेयी सरीखे स्वयंसेवक को विज़नरी, स्टेटसमैन ऑफ दी सेन्चुरी, भा.ज.पा. के शीर्षस्थ नेता और जाने कैसे-कैसे विश्लेषणों से नवाज़ दिया। आज यही विज़नरी पार्टी के बाहर पुस्तक विमोचन करते नजर आ रहे हैं और पार्टी में किसी स्तर के नेता नहीं रह गये हैं। ये उदारवादी चेहरा अपनी पार्टी को पार्लियामेन्ट में कामकाज अवरोधित करते देखता रहा मतलब खामोश स्वीकृति देता रहा। प्रधानमंत्री को भा.ज.पा. की तरफ से ज्ञापन देने जो डेलीगेशन गया था इसका नेतृत्व उदारवादी चेहरे को नहीं करने दिया गया था। भा.ज.पा. जिस तरह अपने शासित राज्यों में सांप्रदायिक, कट्टरपंथी और हिंदुत्ववाद का प्रचार और प्रसार कर रही है, जिस तरह से पिछले 6 महीनों में केंद्र सरकार में विपक्ष के संवैधानिक दायित्वों और कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर रही है और जिस तरह सावरकर और तिरंगा यात्रा जैसे सांप्रदायिक और फासीवादी एजेंडे को जनता के सामने ले जा रही है उससे साफ ज़ाहिर होता है कि भा.ज.पा. ने 'अपना घर' 'अपनी जड़ें' कभी छोड़ी ही नहीं थीं और ना ही छोड़ने का इरादा रखती है जो अपने आप में धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक और संवैधानिक ताकतों के लिये एक तसल्लीबख़्श बात है। अब कोई मुखौटा और भ्रम नहीं रह गया है।

भा.ज.पा. की विचारधारा पहले भी सावरकर से प्रेरित थी और आज भी है। यह बात साफ हो जायेगी अगर हम नीचे लिखे सावरकरवाद के असूलों पर नज़र डालें : **सावरकरवाद का पहला असूल-**राष्ट्र को धार्मिक समुदायों के आधार पर परिभाषित करता है। 15 अगस्त 1943 को सावरकर की इस घोषणा में ये निहित है : 'मेरी मिस्टर जिन्ना की द्विराष्ट्र थ्योरी से कोई लड़ाई नहीं है। हम हिंदू स्वयं में एक राष्ट्र हैं और ये एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं।' (इंडियन एन्यूअल रजिस्टर, 1943, खंड 2, पृष्ठ 10)। **सावरकरवाद का दूसरा असूल-** धार्मिक समुदाय आधारित मुद्दों पर हुए वधों (हत्याओं) को क्षमा करता है। सावरकर ने अपने हिंदू राष्ट्र और उसके बाहर की विवेचना में जर्मन बनाम यहूदी की मिसाल दी है। सावरकरवाद में हत्या के पहलू पर सरदार पटेल ने अपने फरवरी 27, 1948 के नेहरू को लिखे एक खत में ये लिखा था। पटेल ने सावरकर के नेतृत्व में हिंदू महासभा के कट्टरपंथी हिस्से को गांधी के कत्ल का ज़िम्मेदार ठहराया था। 2002 में गुजरात जनसंहार और उसके बाद जो हुआ वो 1948 की प्रतिछाया ही थी। नरेन्द्र मोदी द्वारा कराया गया जनसंहार दूसरे असूल की पुष्टि करता है। सावरकरवाद में हत्या को एक जुर्म माना जायेगा वो इस बात पर निर्भर करता है कि वो धार्मिक समुदाय के हित में किया गया है या नहीं। **सावरकरवाद का तीसरा असूल-** सावरकर की ब्रिटिश सरकार को रहम के लिये की गयी अपील जिसके मुताबिक उसने ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी आस्था जतायी और स्वतंत्रता सेनानी नहीं रहा। सावरकरवाद भाजपा-एन.डी.ए. सरकार की विदेश नीति में साफ नज़र आया जो पूरी तरह अमरीका समर्थक रही। भाजपा-एनडीए सरकार एक वक्त इराक में भारतीय सेना को काबिज़ फौजों का हिस्सा बनाने पर बहुत गंभीरता से विचार कर रही थी। एक तरह से देखा जाये तो एंग्लो-सेन्ट्रीक वर्ल्ड इस तरह की विचारधारा से बहुत संतुष्ट रहता है चाहे वो गुजरात जनसंहार, या गांधी और नेहरू के बारे में कुछ भी कहे। यही वजह थी कि ब्रिटिश राज पाकिस्तान का समर्थक था और आज भी ब्रिटेन पाकिस्तान समर्थक है।

फरवरी 2003 में भाजपा-एनडीए सरकार का पार्लियामेंट हाल में सावरकर की प्रतिमा को स्थापित करना हिंदुत्व की राजनीति का एक अहम हिस्सा था। **'सावरकर और हिंदुत्व :** गोडसे कनेक्शन' इस पुस्तक के लेखक ए.जी. नूरानी का कहना है कि गोडसे पर मुकद्दमे के दौरान इस तरह की गवाही मौजूद थी जो साबित करती है कि सावरकर और गोडसे के बीच एक वैचारिक और राजनीतिक रिश्ता था। ये सावरकर ही था जिसने हिंदुत्व की एक थ्योरी 1923 में ईजाद की जिसमें कहा कि हिंदुत्व और हिंदुइज़्म दोनों अलग-अलग हैं। उसकी थ्योरी ने मुसलमानों और ईसाइयों को हिंदुत्व की परिभाषा से बाहर रखा क्योंकि वो सभी जो भारत में पैदा हुए हैं भारतीय नहीं हैं। गोलवलकर ने अपने 'बंच ऑफ थॉट्स' में माना है कि उसने आर.एस.एस. की विचारधारा बनाने में सावरकर से प्रेरणा ली थी। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हिंदुत्व का दूसरा नाम है और भाजपा ने इसे 1996 और 1998 के चुनावों में इस्तेमाल किया। सावरकर ने ब्रिटिश सरकार को 1911, 1913, 1918 और 1925 में माफीनामा लिख कर दिया था और 1948 और 1950 में भारत सरकार से ये वायदा किया था कि वो किसी तरह की राजनीतिक एक्टिविटी नहीं करेगा। स्वतंत्रता सेनानी भगत सिंह ने कभी ब्रिटिश सरकार से माफी नहीं मांगी और अपने पिता की भर्त्सना की कि उसने अंग्रेजों को उसकी जान बख़्श देने की प्रार्थना की थी।

महाराष्ट्र तक में, स्वतंत्रतापूर्व कांग्रेस, जिसमें समाजवादी भी थे, ने सावरकरवाद का पूरा विरोध किया था। 1938 में मई दिवस की परेड पर हिंदू महासभा, जो तब तक सावरकरवादियों के हाथ में जा चुकी थी, ने हमला किया था। समाजवादी नेता एन.जी. गोरे ने लिखा था : मई दिवस की परेड पर किसने हमला किया था? किन लोगों ने सेनापति बापट और गजानन कानीटकर पर हमला किया था? किसने राष्ट्र ध्वज फाड़ा था? हिंदू महासभा और हेडगेवार के लड़कों ने यह सब किया। उनको मुसलमानों से नफरत करना सिखाया जाता है, उनको कांग्रेस और उसके झंडे जो मुस्लिम समर्थक है, से नफरत करनी सिखाई जाती है, उनको समाजवादियों और कम्यूनिस्टों से, जो हिंदुइज़्म विरोधी हैं, नफरत करनी सिखाई जाती है। उनका अपना झंडा है, 'भगवा' जो मराठा आधिपत्य का प्रतीक है और उनके नेता को राष्ट्र धुरीन, मतलब फ्यूरर कहा जाता है! (कांग्रेस सोशलिस्ट, मई 14, 1938)। महाराष्ट्र में सावरकर की राजनीति की तीखी आलोचना हुई थी। 22 अगस्त 1944 को बापट ने सावरकर के नारे 'हिंदुस्तान हिंदू का...' की बहुत तीखी आलोचना की।

सावरकरवाद के यही असूल भा.ज.पा. की सांप्रदायिक, कट्टरपंथी और फासीवादी विचारधारा की बुनियाद हैं। फरवरी 2003 में भा.ज.पा. एन.डी.ए. सरकार ने पार्लियामेन्ट हाल में सावरकर की प्रतिमा को स्थापित करके हिंदुत्व की राजनीति का खुलकर महिमागान ही नहीं पर उसे प्रस्थापित भी किया। आज फिर आडवाणी यानि सावरकरवादी गुट पार्टी में अपना वर्चस्व स्थापित कर चुका है। 2002 का राज्य प्रायोजित और केंद्र सरकार समर्थित गुजरात जनसंहार को उचित ठहराना, राजस्थान में त्रिशूल बांट और आज पार्लियामेंट के कामकाज को पूरी तरह बाधित करना - ये सब सावरकर के वर्चस्व की तरफ इशारा करते हैं।

आजकल भाजपा के अंदर एक राजनीतिक भ्रम और छल का खेल खेला जा रहा है जिससे प्रेस और मीडिया पार्टी की इस तरह की छवि बना रहा है कि दूसरी कतार के नेताओं के बीच दो विभिन्न विचारधाराएं चल रही हैं। एक ग्रुप पार्टी की हिंदुत्ववादी विचारधारा से जुड़ा रहना चाहता है और दूसरा ग्रुप चाहता है कि पार्टी विकास के मुद्दों पर ही केंद्रित रहे। जैसा कि बिजली, सड़क, पानी जिसकी वजह से दिसम्बर 2003 में भाजपा राजस्थान, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के एसेंबली चुनाव जीती। लेकिन सच तो यह है कि वो उमा भारती हो या सुषमा स्वराज, ये दोनों ही आर.एस.एस. से जुड़े हैं। दोनों ही भाजपा की तथाकथित 'घर वापसी' की लाइन से जुड़े हैं। एक ने 'तिरंगा यात्रा' शुरू की और दूसरी ने अंडमान निकोबार में सावरकर के लिये रैली की। मीडिया इस तरह का भ्रम पैदा कर रहा है कि वाजपेयी और आडवाणी की लाइन अलग-अलग है इसलिये पार्टी में सत्ता संघर्ष ('पावर स्ट्रगल') चल रहा है पर सच तो यह है कि दोनों की लाइन एक है। वैसे उमा भारती की 'तिरंगा यात्रा' भाजपा की अब तक की यात्राओं में सबसे कमजोर रही और अपना उश्द्देय पूरा करने में पूरी तरह नाकाम रही।

इस यात्रा की अप्रत्याशित राजनीतिक नाकामी के कई पहलु हैं। एक, 'तिरंगा यात्रा' केंद्र की यूपीए सरकार के खिलाफ कोई भी राजनीतिक मुद्दा

जीतने में नाकाम रही। ये यात्रा उस तरह की मास अपील भी जेनरेट नहीं कर पायी जिसकी भा.ज.पा. को उम्मीद थी। और सबसे बड़ी नाकामी थी कि ये यात्रा भाजपा के कार्यकर्ताओं (केडर) को पुर्नजीवित नहीं कर पायी। याद दिलाने लायक बात है कि जब उमा भारती खुद 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद के विध्वंस के लिये जुटी भीड़ का नेतृत्व कर रही थी तो सबके पास केवल केसरी झंडे थे न कि तिरंगा। बाबरी मस्जिद पर विध्वंस से पहले केसरी झंडा ही फहराया गया था न कि तिरंगा।

उमा भारती ने हुबली तिरंगा यात्रा क्यों शुरू की? ऐतिहासिक तौर पर कहा जाये तो हुबली में मुस्लिम धार्मिक स्थलों पर तिरंगा फहराने के कार्यक्रम के असली जन्मदाता सावरकर के नेतृत्व वाली हिंदू महासभा रही है। हुआ ऐसा था कि मैसूर रियासत के शिमोगा नगर में कांग्रेसियों के नेतृत्व में जो गणपति के जुलूस निकाले जाते थे उनमें हिंदू महासभाई केसरिया झंडे लेकर भड़काऊ भाषण देते थे। वे गांधी और कांग्रेस को कोसते थे और नारे लगाते थे 'हिंदू धर्म की जय, हिंदुस्तान हिंदुओं का।' इन विघटनकारी हरकतों से परे शान कांग्रेस ने यह फैसला लिया कि गणपति के जुलूसों में सिर्फ तिरंगा रहेगा। इस पूरी बहस को एक सांप्रदायिक मोड़ देने के लिये हिंदूमहासभा ने यह फैसला लिया कि वह मुस्लिम धार्मिक स्थलों पर तिरंगा फहरायेगी और आम हिन्दुओं से आह्वान किया कि वे तिरंगे की जगह केसरिया अपनायें। उमा भारती की तिरंगा यात्रा तिरंगे को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार करने के लिये नहीं बल्कि मुसलमानों के खिलाफ उन्माद फैलाने के लिये थी। संघ ने अपने जन्म से लेकर आज तक तिरंगे झंडे को राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र के प्रतीक के तौर पर नहीं स्वीकारा। 1925 में अपनी स्थापना के बाद से ही संघ टोली हर उस चीज और प्रतीक से नफरत करती थी जो अंग्रेज शासन के खिलाफ भारतीय जनता के एकताबद्ध संघर्ष के प्रतीक थे। यही नफरत स्वतंत्रता के बाद भी बरकरार है। गांधीजी की हत्या के बाद 1948 में जब गोलवलकर जेल में बंद थे तो उनके और सरकार के बीच मध्यस्थता कर रहे मौलीचंद्र शर्मा ने उनको कहा था कि उन्हें अपने संविधान में साफ तौर से लिखना चाहिये कि वे भगवा की नहीं तिरंगे को राष्ट्र ध्वज मानते हैं। सरदार पटेल ने इस बारे में स्पष्ट कहा कि जब तक आर.एस.एस. तिरंगे को राष्ट्रीय ध्वज नहीं मानेगा उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। संघ का पहले कोई संविधान था ही नहीं। सो पहले संविधान बनाया गया और उसमें शामिल किया गया कि ''राष्ट्र ध्वज के प्रति निष्ठा और आदर व्यक्त करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य मानते हुए, संघ का ध्वज भगवा ध्वज है।''

साफ ज़ाहिर है कि संघ परिवार के दर्शन और उसके कार्यकलापों में तिरंगे झंडे के लिये कोई जगह नहीं है और जब भी बनी तो संघ को बचाने और अपने नेताओं को जेल से छुड़वाने के लिये वो चाहे 1948 हो या इंदिरा गांधी की इमरजेन्सी या फिर उमा भारती के खिलाफ केस वापिस लेने की बात। 1991 में मुरली मनोहर जोशी 'एकता यात्रा' के नाम पर तिरंगा झंडा फहराने श्रीनगर के लाल चौक पर गये थे। ये भी आर.एस.एस. के दर्शन का एक हिस्सा था वैसे ही जैसे उमा भारती की तिरंगा यात्रा'। मतलब मुसलमानों के खिलाफ सांप्रदायिक उन्माद फैलाने के लिये।

उमा भारती की तिरंगा यात्रा और उसी वक्त सुषमा स्वराज का सावरकर को लेकर सत्याग्रह से एक निष्कर्ष तो साफ निकलता है कि दूसरी कतार के नेता कट्टर हिंदुत्व के समर्थक और प्रचारक हैं। आज लगता है कि ये आर.एस.एस. की सोची समझी राजनीतिक रणनीति थी कि वाजपेयी पिछले 40 सालों से अपने को उदारवादी चेहरे के रूप में पेश करते रहे और आडवाणी को कट्टरवादी और जरूरत पड़ने पर वाजपेयी अपना उदारवादी चेहरा उतार फेंके और अपने कहे से मुकर जायें जैसा कि उन्होंने गुजरात जनसंहार के बारे में किया। आर.एस.एस. के पास आज इस भ्रम को बरकरार रखने के लिये दूसरी कतार के नेता मतलब एक वाजपेयी और दूसरा आडवाणी नहीं है इसीलिये अरूण जेटली, प्रमोद महाजन, उमा भारती, कल्याण सिंह, सुषमा स्वराज, वेंकैया नायडू सभी कट्टरवादी, हिंदुत्ववादी और सावरकर की भाषा बोल रहे हैं जो अपने आप में देश के लिये बहुत ही शुभ संकेत है क्योंकि अब देश को वाजपेयी जैसे दोहरे चेहरे से छुटकारा मिल रहा है और सिर्फ एक आडवाणी का चेहरा ही देश के सामने आ रहा है। मतलब लड़ाई किस से है अब साफ हो गया है।

लोकसभा चुनाव हारने के बाद भाजपा ने विपक्षी पार्टी के रूप में पार्लियामेंट को काम नहीं करने दिया। ऐसा पिछले पचास साल के लोकतांत्रिक इतिहास में पहली बार हुआ है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को अपने मंत्रियों का परिचय तक नहीं कराने दिया। मनमोहन सिंह के पहले बजट पर नयी निर्वाचित लोकसभा में बहस नहीं होने दी।

दागी मंत्रियों के जिस सवाल को लेकर भा.ज.पा. ने पार्लियामेंट का कामकाज नहीं होने दिया उस पर भाजपा का अपना रिकार्ड कोई अच्छा नहीं है। भाजपा को भ्रष्टाचार से कभी परहेज नहीं था न ही भ्रष्टाचार विरोध इसकी नीति रही है। अपने छः सालों के राज के दौरान भा.ज.पा. ने संघ परिवार को सस्ते दामों पर ज़मीनें आवंटित कीं, पेट्रोल पम्प दिये, ताबूत घोटाले किये, तहलका सामने आया और जूदेव रिश्वत लेते हुए कैमरे में पकड़े गये। भाजपा के यूपी में खुद जो कई मिनिस्टर 'हिस्ट्रीशीटर' थे वे सभी दागी मंत्री थे। बसपा को छोड़ कर आये विधायक कल्याण सिंह की सरकार में 27 अक्तूबर 1997 को दाग़ी मंत्रियों की शपथ ग्रहण समारोह में वाजपेयी खुद लखनऊ में उपस्थित थे। उनमें भी काफी दाग़ी मंत्री थे। दिसंबर 1997 में आडवाणी ने जयललिता से उसी दिन गठबंधन का करार किया जिस दिन उन्हें हाईकोर्ट ने सेंसर किया था। भा.ज.पा. नेता आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी और उमा भारती जिनके खिलाफ बाबरी मस्जिद के ध्वंस के मामले में गुनाह दाखिल थे, केन्द्रीय मंत्री थे। इस गुनाह को राजनीतिक गुनाह कहना गलत है। जार्ज फर्नांडीस को दोबारा कैबिनेट में लाना उस सार्वजनिक आश्वासन के खिलाफ था जो प्रधानमंत्री वाजपेयी ने दिया था। उन्होंने कहा था जब तक जाँच आयोग जार्ज फर्नांडीस को बरी नहीं कर देता तब तक उन्हें दोबारा मंत्री नहीं बनाया जायेगा। जनता इन तथ्यों को जानती है और भूली नहीं है इसीलिये सरकार में दाग़ी मंत्रियों का मुद्दा जनता की सहानुभूति नहीं ले पाया, प्रधानमंत्री के अशिष्ट व्यवहार की बात पर किसी ने भरोसा नहीं किया। शीतकालीन सत्र में भा.ज.पा. ने दागी मंत्रियों का मुद्दा उठाया ही नहीं।

दाग़ी मंत्रियों के साथ-साथ भा.ज.पा. ने गर्वनरों की नियुक्ति का मुद्दा भी उठाया। अक्सर गर्वनरों की नियुक्ति सत्ताधरी पार्टी करती है, गर्वनर उसी पार्टी की विचारधारा के होते हैं और उसकी विचारधारा को आगे बढ़ाते हैं। भाजपा ने अपने ज़माने में सभी ऐसे गर्वनर नियुक्त किये जिनका संघ परिवार और भाजपा से ताल्लुक था। यहां तक उपराष्ट्रपति भी संघ परिवार का बनाया। यूपीए सरकार द्वारा ऐसे गर्वनरों को हटाने पर भाजपा ने एतराज करना शुरू किया। इसी तरह पाठ्यपुस्तकों के सांप्रदायिकरण का मुद्दा था। मानव संसाधन विकास मंत्री ने एक कमेटी का गठन किया जो पाठ्यपुस्तकों में से सांप्रदायिकता को निकाल कर धर्मनिरपेक्ष बनाने के साथ और दूसरे तथ्यों को भी देखेगी जिनसे इतिहास को धर्मनिरपेक्ष बनाया जा सके। इस पर भी भा.ज.पा. ने आंदोलन किया। शिक्षा मंत्रियों की बैठक में भाजपा के मध्य प्रदेश के शिक्षा मंत्री ने संघ परिवार की लाइन ली और कहा कि भाजपा शासित प्रदेश अपनी पाठ्यपुस्तकें बनायेंगे। साफ ज़ाहिर है कि भाजपा ने विपक्ष की भूमिका नहीं निभाई।

जब हम सरकार के काम का आंकलन करते हैं तो विपक्ष की भूमिका का आंकलन करना भी जरूरी है। अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करना विपक्ष की भी उतनी ही जिम्मेदारी है जितनी कि सत्ता पक्ष की। पर आज तक की विपक्ष की भूमिका देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि भाजपा लोकतांत्रिक

प्रणाली में विश्वास नहीं रखती, अल्पसंख्यक विरोधी है और समुदायों को बांटने में विश्वास रखती है मतलब सावरकरवादी है।

देखा जाये तो भाजपा का वर्तमान व्यवहार कोई चौंका देने वाला नहीं हैं। इसके नेता और अनुयायियों और भारतीय संविधान के बीच रिश्ता हमेशा से ही तनावपूर्ण रहा है। इन्होंने कभी धर्मनिरपेक्षता के उद्देश्य को नहीं माना जो संविधान की प्रस्तावना में लिखा है और आर.एस.एस. के प्रचारकों के रूप में ये हमेशा से हिंदू राष्ट्र बनाने की बात करते हैं। ये लोग वैज्ञानिक और तार्किक विमर्श के खिलाफ हैं। मुरली मनोहर जोशी ने शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिष जैसे अतार्किक और अवैज्ञानिक पाठ्यक्रम पढ़ाने की कोशिश की। ये विचार आर.एस.एस. की विचारधारा से पूरी तरह मेल खाते हैं। भाजपा की विचारधारा भारत को एक धार्मिक देश बनाना चाहती थी, है, और चाहेगी। अब तक भाजपा की रणनीति चुनावों में हिस्सा लेने के साथ-साथ सांप्रदायिक हिंसा फैलाने की रही है। आज भी देश 1992 में बाबरी मस्जिद का विध्वंस और 2002 का राज्य सरकार प्रायोजित और केंद्र सरकार समर्थित संहार नहीं भूला है।

ऊपर लिखे हुए से यह साफ साबित हो जाता है कि भाजपा सांप्रदायिक, फासीवादी, संविधान में विश्वास न रखने वाली, अल्पसंख्यक विरोधी, दलित और महिला विरोधी और नस्लवाद सावरकर की विचारधारा, जो बाद में आर.एस.एस. की विचारधारा बनी, में विश्वास करती है, करती थी और करती रहेगी। ऐसी पार्टी भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में **पर्सोना नान ग्राटा** मानी जानी चाहिए। आज से पहले इसने कई बार साबित किया है कि यह पार्टी बहुलतावाद में विश्वास नहीं रखती। ये भारतीय समाज को धर्म, नस्ल, जाति और वर्ण के आधार पर बांटने में विश्वास रखती है। जो उदारवादी ताकतें भाजपा के उदारवादी चेहरे वाजपेयी के पाखन्ड (हिपोक्रेसी) में विश्वास करते हैं वो सरासर गलत है। भा.ज.पा. और इसके गठबंधन शासित राज्यों में भा.ज.पा. सरकारें सांप्रदायिकता फैला रही हैं, अल्पसंख्यकों पर हमले करवा रही हैं केंद्र सरकार में विपक्ष की भूमिका न निभाकर, पार्लियामेन्ट का काम-काज अवरोधित कर भा.ज.पा. साबित कर रही है कि वो लोकतांत्रिक प्रणाली में विश्वास नहीं रखती। उमा भारती की तिरंगा यात्रा, सुषमा स्वराज का अंडमान निकोबार में प्रदर्शन करना, मणि शंकर अय्यर के सावरकर पर बयान पर प्रतिक्रिया, प्रधानमंत्री के साथ दुर्व्यवहार, यह सब भा.ज.पा. के अलोकतांत्रिक, हिंदुत्ववादी और फासीवादी चरित्र की पुष्टि करता है और इस तथ्य की पुष्टि भी कि भा.ज.पा. ने घर कभी छोड़ा ही नहीं था और 'घर वापसी' या 'जड़ों की तरफ' जाने वाली बात एक भ्रम है। कांची के शंकराचार्य की गिरफ्तारी को एक तमिल न्यूज़ मैगज़ीन द्वारा किये गये ग्रामीण और शहरी सर्वे में 70 प्रतिशत लोगों ने ठीक माना है। तमिलनाडू की जनता क्या मानती है इससे भा.ज.पा. को कुछ लेना देना नहीं है। सभी ये साबित करते हैं कि भा.ज.पा. एक हिंदुत्ववादी पार्टी है, थी और रहेगी। 'घर वापसी' और 'जड़ों की तरफ' जाने की बातें बेमानी हैं क्योंकि भा.ज.पा. ने हिंदुत्ववाद को कभी छोड़ा ही नहीं था।

यह सच है कि यू.पी.ए. सरकार की आर्थिक नीतियां आम आदमी के पक्ष में नहीं हैं पर कांग्रेस के चरित्र को देखते हुए,-कांग्रेस में कुछ तत्त्व हैं जो आर.एस.एस. भा.ज.पा. से या तो सहानुभूति रखते हैं या फिर भा.ज.पा. आर.एस.एस. से कांग्रेस में आये हैं, यह उम्मीद करना गलत होगा कि वो भा.ज.पा. द्वारा चलाये गये सांप्रदायिक आंदोलनों का मुँह तोड़ जवाब दे पायेगी या कांग्रेस शासित राज्यों के प्रशासन को पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष कर पायेगी। इसीलिये सारी जिम्मेदारी वामपंथी, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष पार्टियों और ताकतों की है कि वो भा.ज.पा. को 1992 और 2002 दोहराने से रोकें। इन ताकतों को भाजपा का असली रूप देश के सामने लाना चाहिये। इन ताकतों को आम आदमी को बताना होगा कि इस देश में दो तरह की राजनीतिक पार्टियां हैं एक वो जो लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, संविधान और संसदीय प्रणाली में विश्वास रखती हैं और दूसरी वो जो भारत को हिंदूराष्ट्र बनाना चाहती हैं मुसलमानों के खिलाफ है, संविधान और संसदीय प्रणाली में नहीं बल्कि फासीवाद, तानाशाही और सावरकरवाद में विश्वास रखती है और जिनका नेतृत्व भा.ज.पा. करती है। तभी विश्व का तीसरा सबसे बड़ा भारतीय लोकतंत्र बच पायेगा।

दागी संत बनाम दागी मंत्री

कांची कामकोटि मठ के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती की कत्ल के आरोप में गिरफ्तारी और हाईकोर्ट के जमानत नामंजूर करने के बाद भा.ज.पा. और संघ परिवार ने शंकराचार्य की रिहाई के लिये तीन दिवसीय रिले भूख हड़ताल का 'आंदोलन' किया जिसमें समाजवादी और पूर्वप्रधानमंत्री चंद्रशेखर और कांग्रेस पार्टी द्वारा नियुक्त पूर्व राष्ट्रपति वेंकटरामन ने भी भाग लिया। इन दोनों का इस 'आंदोलन' में हिस्सा लेना और अपने आपको कट्टरपंथी, सांप्रदायिक और हिन्दुत्ववादी ताकतों से जोड़ना एक अफसोसजनक बात थी। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि पूर्व राष्ट्रपति भा.ज.पा. जैसी सांप्रदायिक पार्टी के साथ खड़ा था और वो भी ऐसे आदमी की हिमायत में जिस पर प्रायोजित और मोटीवेटेड कत्ल का इल्ज़ाम है और राज्य सरकार का मानना है कि उसके पास जयेन्द्र सरस्वती के खिलाफ ठोस सबूत हैं।

जमानत की अर्जी नामंजूर करते हुए हाईकोर्ट ने 'कानून के सामने सब बराबर हैं' के असूलों को लागू करते हुए कहाः आपराधिक जांच अब पूरी होने को है; अपराधी के खिलाफ लगाये गये आरोप काफी **संगीन** हैं (हत्या, साजिश, और गवाही को नष्ट करने की कोशिश)। कोर्ट का कहना था कि प्राइमाफेसी (विशेषतः क़ानूनी) ऐसा नज़र आता है कि आचार्य साजिशकर्ता हैं, साथ ही उन्होंने हत्या करने के लिये पैसे का भी इन्तजाम किया, गिरफ्तारी पूर्व संवैधानिक और क़ानूनी नियमों का पालन किया गया है और आचार्य को 15 दिन का रिमांड संवैधानिक और क़ानूनी है। कोर्ट के मुताबिक आचार्य के खिलाफ आरोप **संगीन** हैं। कोर्ट ने दूसरी बार भी जमानत की अर्जी नामंजूर करते हुए यही कहा। सुप्रीम कोर्ट ने शंकराचार्य की जमानत की याचिका पर सुनवाई अब 6 जनवरी तक टाल दी है और वो पूरे दस्तावेज देखे बिना कोई फैसला देने को तैयार नहीं है। सुप्रीम कोर्ट में अपील करने की तैयारी में है। इस मामले में सिर्फ एक भा.ज.पा. के अलावा सभी छोटी-बड़ी पार्टियां इस बात पर सहमत है कि क़ानून से ऊपर किसी को नहीं होना चाहिए, क़ानून को अपना काम करने देना चाहिये और न्याय प्रक्रिया को अवरोधित करने की बजाय इसका सम्मान करना चाहिये। भा.ज.पा. और संघ परिवार ने इन सब असूलों को तोड़ने का मन बनाया है।

भा.ज.पा. और संघ परिवार का आंदोलन मूलतः आचार्य के खिलाफ हत्या के जांच के आरोपों और मुकदमे की वैधता के खिलाफ है। इसे भा.ज.पा. और संघ परिवार उन्मादी भाषा में हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलना कह रहे हैं। यह उस वक्त की याद दिलाता हैं जब अयोध्या के आंदोलन के कट्टर समर्थक कहा करते थे कि आस्था और धर्म के मामलों में देश के क़ानून लागू नहीं होते। आज फिर जिस तरह से भा.ज.पा. ने संकररामन की हत्या, जयेन्द्र सरस्वती की गिरफ्तारी और इनसे जुड़े मुद्दों को उन्मादीकरण शुरू कर दिया है उससे साफ साबित होता है कि संघ परिवार और भा.ज.पा. देश के संविधान और क़ानून का आधिपत्य नहीं मानते। एक तरफ भा.ज.पा. दागी मंत्रियों के खिलाफ आंदोलन कर रही है और दूसरी तरफ दागी संत और पुजारी के समर्थन में आंदोलन कर रही है। इससे भा.ज.पा. का हिंदुत्ववादी चरित्र ही सामने आता है।

'समाजवादी'- अपराधी, पूंजीपति और सांप्रदायिक

1990 की पतझड़ में चम्बल की घाटियों के एक अहीर पहलवान राजनीतिज्ञ उत्तर प्रदेश में सभी की नफरत का पात्र था। पुलिस अपने वायरलैस पर गालियां दिया करती थी। इसका नाम जानवरों की कमरों पर भड़कीले रंगों में लिखा जाता था। उसके पुतले को दिन में तीन बार लखनऊ की सड़कों और गलियों में घुमाया जाता था और बाद मे जला दिया जाता था। उसे कुछ आदमी 'मौलाना' के नाम से पुकारते थे। कट्टर हिंदुत्ववादी पत्रकार उसके बारे में अयोध्या में राम की, जो विष्णु का मानव अवतार, जन्मभूमि की किये गये अत्याचारों पर मनगढ़न्त कहानियां लिखते थे। वातावरण इस तरह का था कि पुनरूत्थित हिंदुत्व के समर्थक भगवान के नाम पर इस अधर्मी को सबसे भयानक सज़ा देने की बात करते थे।

यह था मुलायम सिंह के पहली बार बने मुख्यमंत्री का दौर जहां अब तक सिर्फ राजपूत या ब्राह्मण ही मुख्यमंत्री बन पाये थे। यादव सरकार ने 1990 में 'रामभक्त कारसेवकों' के हाथों से बाबरी मस्जिद को विध्वंस से बचाया था। कारसेवकों ने अयोध्या में इतना उधम मचाया कि अक्टूबर-नवम्बर 1990 में पुलिस को गोली चलाने के आदेश देने पड़े। अगर इस गोलीबारी ने प्रतिगामी (रिएक्शन) ताकतों को नाराज़ किया तो दूसरी तरफ यादव सरकार ने वामपंथी, लोकतांत्रिक ताकतों और देशभर के अल्पसंख्यकों से प्रशंसा पायी। सबने तब सोचा था कि उत्तर प्रदेश दोबारा से ऐसा कट्टरपंथी और हिंदुत्ववादी नहीं होगा। सबने सोचा कि 'नीच जातियों' के सत्ता में आ जाने से हिंदू समाज और संस्कृति में बदलाव आयेगा। राज्य की राजनीति बदल जायेगी। तभी से सी.पी.आई और सी.पी.एम. मुलायम सिंह यादव के साथ एक व्यापक लोकतांत्रिक और प्रगतिशील गठबन्धन बनाने की कोशिशों में लगे हुए हैं।

मुलायम सिंह यादव को, जो कमज़ोरों का मजाक उड़ाने और 'बागियों' की तारीफ करने की परम्परा में पले बड़े हुए हैं, ने अपने स्वार्थी हितों की खातिर अंडरवर्ल्ड से राजनीतिक और व्यक्तिगत संबन्ध कायम करने और बनाने में कभी भी परहेज़ नहीं था। उन्होंने इस फ्रंट पर अपनी साफ छवि पेश करने की कोशिश भी नहीं की। कोई ताज्जुब नहीं इसलिए कि समाजवादी पार्टी (स.पा.) में आज सबसे ज़्यादा आरोपित सांसद और विधायक हैं। आज उनकी 60 सदस्यों की कैबिनेट में कई आरोपित मंत्री हैं।

यह बात भी याद रखनी चाहिये कि ये यादव, राम मनोहर लोहिया और चौधरी चरणसिंह की मध्य जाति किसानों (मिडिल कास्ट) की राजनीति, जिसमें धार्मिक कट्टरपंथिता और धर्मान्धता के लिए कोई जगह नहीं है, में भी पला बढ़ा है। इन नेताओं ने उत्तर भारत में गैर ब्राह्मण राजनीतिक आंदोलन का नेतृत्व किया था। उ.प्र. में संघ परिवार का प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ, मुलायम सिंह का कांग्रेस विरोधी नज़रिया भा.ज.पा. विरोधी में बदल गया और इस तरह 1990 में वो ऐसी राजनीति के प्रति प्रतिबद्ध रहे जो कट्टरपंथिता और धर्मान्धता के खिलाफ थी। 1990 के तजुर्बे ने मुलायम सिंह को व्यावहारिकता (प्रेगमेटीज़्म) का पाठ पढ़ा दिया। वैसे उनकी राजनीति व्यावहारिकताविहीन थी ऐसा भी नहीं था। लेकिन किसी को ये उम्मीद नहीं थी कि उनका प्रेगमेटीज़्म इस हद तक पहुंच जायेगा कि वक्त के साथ-साथ, उनकी राजनीति में 'धर्मनिरपेक्ष' और दक्षिण पंथ में कोई फर्क नहीं रह जायेगा।

उ.प्र. की हर पल बदलती राजनीति में, यादव अच्छी तरह समझ गये थे कि राजनीतिज्ञ अपनी निष्ठा और पार्टियों को अंडरगारमेन्ट्स की तरह जल्दी-जल्दी बदलते हैं। वो समझ गये थे कि सिर्फ 'जनसेवा' के आधार पर जनाधार नहीं बन सकता। यहां तक कि जाति केंद्रित लामबन्दी (मोबिलाईजेशन) और गुंडागर्दी भी सत्ता में बने रहने के लिये काफी नहीं थे। वो समझ गये थे कि चुनावी राजनीति में जनादेश हासिल करने के लिये 'विचारधारात्मक' प्रतिद्वन्दीयों और व्यक्तिगत निन्दकों को भी साथ लेकर चलना ज़रूरी है। उत्तर भारत के सभी गुटीय राजनीति के नेताओं की तरह यादव के लिये ज़रूरी हो गया था कि वो राज्य के अंदर और बाहर अपनी स्थिति मज़बूत करें। मायावती की ब.स.पा. से दलित को दूर करना मुश्किल था और इसीलिये उच्च जातीय हिंदू वोट मुलायम सिंह यादव के लिये सत्ता में बने रहने के लिये ज़रूरी थे।

1991 की जनगणना के दौरान यादव ने एक सोची-समझी रणनीति के तहत 'अपनी सनातन हिंदू' की पहचान का दावा, प्रचार और प्रसार किया। हिंदू मतदाता को ये बताया गया कि आखिर में यादव भगवान कृष्ण, विष्णु के दूसरे अवतार के वंशज हैं। पर तब ये सिर्फ एक शुरुआत थी। मुलायम सिंह के दूसरी बार मुख्यमंत्री के दौरान ब.स.पा. से झगड़ा होने के बाद उनका भा.ज.पा. विरोधी और उच्च जातीय हिंदुओं के प्रति रुख में एक क्रमबद्ध तरीके से बदलाव आना शुरू हुआ।

इंदिरा कांग्रेस 80 के दशक के उत्तरार्द्ध में दक्षिण की राजनीति की तरफ झुकी और हिंदू बहुसंख्यकों से रिश्ते सुधारने की दिशा में कदम 90 के दशक के शुरू में उठाये। हालांकि असली समाजवादियों ने 'शहरी पूंजीपतियों' के खिलाफ अपनी नफरत कभी नहीं छुपाई, पर आज ये ही समाजवादी उ.प्र. में निवेश बढ़ाने के लिये ही नहीं बल्कि चुनावों और पार्टी के लिये राशि जुटाने में बड़ी-बड़ी निजी कंपनियों की खुशामद करते नज़र आते हैं।

हाल ही में गठित यू.पी. डेवलपमेंट कॉउंसिल में, जिसे राजनीतिक हलकों में 'सुपर कैबिनेट' का नाम दिया जाता है, आदि गोदरेज, अनिल अम्बानी, कुमार मंगलम बिरला, सुब्रोतो राय (सहारा) और अमिताभ बच्चन सदस्य हैं। अम्बानी और जया बच्चन को स.पा. राज्यसभा में भेज चुकी है। पहले स्वतंत्र और दूसरी स.पा. की उम्मीदवार थे। सुब्रोतो राय, जो अटल बिहारी वाजपेयी के बहुत करीब हैं, यादव के राज के दौरान कई बड़ी औद्योगिक परियोजनाएं राज्य में लाये हैं। ध्यान में रखने लायक बात है कि हैं स.पा. के राष्ट्रीय सचिव और सी.ई.ओ अमर सिंह इस कॉऊन्सिल के अध्यक्ष हैं। ये एक सच है कि समाजवादी पार्टी का भा.ज.पा. के प्रति नरम रुख अमर सिंह के पार्टी में उत्कर्ष से शुरू हुआ। बिरला घराने का भूतपूर्व संपर्क मैनेजर और जाति से राजपूत देसी ये समाजवादियों और धनी पूंजीपतियों और बॉलीवुड के सितारों के बीच एक कड़ी बन गये।

अमर सिंह की पार्टी में तेज़ी से तरक्की के साथ दूसरी कतार के सभी समाजवादी नेताओं, जानेश्वर मिश्र, रामशरणदास, रेवती रमन सिंह, बेनी प्रसाद वर्मा और आज़म खान का प्रभाव कम होता गया। ये भी इंदिरा कांग्रेस की रणनीति की तरह ही था जिसमें महत्वाकांक्षी नेताओं को उत्तराधिकार होने का हक सिर्फ कानूनी वंशज को ही है। यादव भी अपने भाई शिवपाल यादव और अपने बेटे अखिलेश यादव को योजनाबद्ध तरीके से राजनीति में लाये। आज शिवपाल यादव, पी.डब्ल्यू.डी विभाग के कैबिनेट मंत्री होने के साथ-साथ मंडी परिषद् के अध्यक्ष हैं। साथ ही राज्य इकाई के सचिव भी हैं और उन्हें राज्य सरकार का डि-फैक्टो प्रमुख

भी माना जाता है। अखिलेश यादव, बेटे और सांसद स.पा. की समाजवादी युवाजन सभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। यादव के चचेरे भाई सांसद राम गोपाल यादव स.पा. की पार्लियामेन्टरी पार्टी के नेता हैं और मुलायम सिंह के ही भतीजे धर्मेन्द्र यादव मैनपुरी लोकसभा क्षेत्र, जो मुलायम सिंह यादव ने छोड़ी है, से स.पा. के उम्मीदवार हैं। मुलायम की ये वंशगत केंद्रित राजनीति इंदिरा गांधी की 70 और 80वें दशक की राजनीति की याद दिलाते हैं। आज जो कांग्रेस और स.पा. के बीच टकराव और परस्पर विरोध किसी विचारधारात्मक मतभेदों की वजह से नहीं बल्कि सत्तावादी (एथोटिरियन) राजनीति का नतीजा है।

मुलायम सिंह यादव के गणित के मुताबिक ब्राह्मण और बनिये कांग्रेस में वापस जाने के बजाये भा.ज.पा. के साथ रहना पसंद करेंगे इसलिये उनके गणित में स.पा. के लिये राजपूत भी उतने ही महत्वपूर्ण हो गये जितने कि मुसलमान और इस संदर्भ में अमर सिंह को राजपूतों को स.पा. में लाने का ज़िम्मा दिया। मुलायम सिंह की तीसरी सरकार ने बहुत से राजपूत और अहीर अफसरों को उंचे पदों पर नियुक्त किया। इस तरह डिविज़नल कमिश्नर, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, इंस्पेक्टर जनरल और डिस्ट्रिक्ट पुलिस चीफ से लोकसभा चुनावों में मदद की उम्मीद की गयी। इसी दौरान मुलायम सिंह यादव ने ब्राह्मणवादी ताकतों और संघ परिवार के सबसे ज़्यादा बदनाम नेताओं से दोस्ती की और मधुर सम्बन्ध बनाये।

मुलायम सिंह यादव के 1999 में कांग्रेस गठबंधन को समर्थन न देने के फैसले ने भा.ज.पा-रा.ज.ग. सरकार बनने का रास्ता बनाया और इसके साथ-साथ यादव के भा.ज.पा से संबंध मधुर होते गये। हांलाकि उत्तर प्रदेश में स.पा. सरकार अगस्त 2003 में बनी थी पर भा.ज.पा. के केसरीनाथ त्रिपाठी मई 2004 तक विधान सभा के अध्यक्ष बने रहे। लोकसभा चुनावों के दौरान साड़ी के लिये कुचली गयी 21 औरतों और बच्चों के मुद्दे पर भी मुलायम सिंह यादव भा.ज.पा. नेता लाल जी टंडन के साथ खड़े पाये गये। उन्होंने जिन आयोजकों से मदद ली थी वे सभी पुलिस रिकार्डों में गुनहगार थे। बजाये इसके की स.पा. सरकार इस कांड में आयोजकों को सजा देती स.पा. सरकार ने उन्हें खुला छोड़ दिया।

भा.ज.पा. के साथ सहयोग-भा.ज.पा. ने भी स.पा. के सुमधुर व्यवहार का बदला चुकाया। 4 सितम्बर को अटल बिहारी वाजपेयी, वकीलों और पुलिस के बीच झगड़े में मुलायम सिंह की मदद करने के लिये फौरन पहुंचे। एक दिन पहले एक फौजी ट्रक ने एक वकील को कार से टक्कर मार दी थी। पुलिस द्वारा ट्रक ड्राइवर को गिरफ्तार न करने के विरोध में वकील प्रदर्शन कर रहे थे। पुलिस ने मनमाना व्यवहार किया, वकीलों को बन्दूक की मुठों से मारा और इसमें कई वकील घायल हो गये। इसकी वजह से सारे देश में वकीलों ने विरोध प्रर्दशन किया। कुछ हफ्तों बाद कानपुर में भा.ज.पा. के कार्यकर्ताओं द्वारा बिजली की कमआपूर्ति पर किये गये प्रदर्शन पर भी पुलिस का वैसा ही निरंकुश व्यवहार था जैसा वकीलों के साथ हुआ था। पार्टी की कानपुर इकाई ने भा.ज.पा. नेतृत्व को मुख्यमंत्री आवास पर धरने का ऐलान करने पर मजबूर किया लेकिन केसरी नाथ त्रिपाठी ने जो अब राज्य में पार्टी के अध्यक्ष हैं, यह धरना वापस ही नहीं लिया बल्कि यादव का चाय का निमंत्रण भी स्वीकार किया और पिछला सब भूलने का वादा भी किया। इसी तरह त्रिपाठी ने अक्टूबर के शुरू में स.पा. सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने का ऐलान किया था। हांलाकि यह ऐलान पार्टी में बढ़ते हुए असंतोष को सामने रखकर किया गया था पर महीने के आखिर में विपक्ष में आपसी मतभेद होने की वजह से भा.ज.पा. ये प्रस्ताव नहीं लायी। 19 दिसम्बर को लखनऊ में अटल बिहारी वाजपेयी ने मुलायम सिंह की तारीफ के पुल बांधते हुए कहा कि भा.ज.पा. और स.पा. एक साथ आ सकती हैं। दूसरे ही पल हमेशा की तरह इस बात से नकारा भी।

बाबरी मस्जिद विध्वंस केस पर भी स.पा. के इरादे भा.ज.पा. और ब.स.पा. की तरह संदेहास्पद हैं। कारसेवकों और साजिशकर्ताओं के खिलाफ 1992 में दो केस (गुनाह न. 197 और 198) दर्ज किये गये थे। और रोचक बात तो ये है कि अलग-अलग वक्तों पर दो केस दर्ज किये गये- एक रायबरेली में और दूसरा लखनऊ में। राज्य सरकार ने सी.बी.आई की,दोनों केसों को एक साथ एक जगह दर्ज करने की सारी कोशिशें विफल कर दीं। ज़ाहिर है राज्य सरकार नहीं चाहती कि ये केस जल्दी तय हों और क्यों नहीं चाहती इसकी वजह भी साफ है। मुख्य साजिशकर्ताओं -एल.के. आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती, अशोक सिंघल, विष्णु हरि डालमिया, विनय कटियार, साध्वी रितम्भरा, के नाम गुनाह नम्बर 198 में दर्ज हैं जिसकी सुनवाई राय बरेली में हो रही थी। बाद में भी सी.बी.आई. की लाख विनती के बावजूद राज्य सरकार ने न्यायिक प्रक्रिया को तेज़ करने के लिये इस केस को लखनऊ में ट्रांसफर नहीं किया। इसी बीच एन.डी.ए. सरकार के राज के दौरान सी.बी.आई. ने भी इस मामले पर खामोशी अख्तियार कर ली।

सबसे ज्यादा चौंका देने वाला और रहस्यमय तथ्य है-1987 में हाशिमपुरा और मलियाना में मुसलमानों के कत्लेआम के जिम्मेदार लोगों के खिलाफ मुलायम सिंह सरकार द्वारा मुकदमा न दायर करना। 22 मई 1987 को पी.ए.सी. ने हाशिमपुरा से 42 मुसलमानों को गिरफ्तार कर उनको गोली मार दी और उनके शवों को गाजियाबाद जिले में हिंडन पुल से गंगा में फेंक दिया। पी.ए.सी. की आपराधिक जांच शाखा ने पी.ए.सी. के 66 अफसरों और जवानों को इसका दोषी पाया था। पर इस शाखा को 1994 में सिर्फ 19 के खिलाफ केस दर्ज करने की अनुमति मिली। राज्य सरकार ने गुनाह में शामिल किसी भी अफसर के खिलाफ अपराध दायर नहीं किया। आठ साल से चल रहे केस की धीमी गति को ध्यान में रखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने 2002 में ये केस नई दिल्ली के एडीशनल सेशन जज की कोर्ट में ट्रांसफर कर दिया। सय्यद शाहबुद्दीन, मौलवी मोहम्मद यामिन और स.पा. तक के आज़म खान जैसे मुस्लिम नेताओं द्वारा बार-बार लिखित मांग के बावजूद मुलायम सिंह सरकार ने सरकारी वकील की नियुक्ति नहीं की है। हालांकि गुरशरण लाल श्रीवास्तव आयोग ने मलियाना गांव के कत्लेआम पर अपनी रपट राज्य सरकार को दस साल पहले सौंप दी है पर राज्य सरकार ने अभी तक उसे सार्वजनिक नहीं किया है। एक नागरिक इब्राहिम कुरेशी के हाईकोर्ट में एक पी.आई.एल के जवाब में राज्य सरकार ने अप्रैल 2003 में यह हलफनामा दायर किया कि आयोग की रिपोर्ट को सार्वजनिक करना 'जनहित के खिलाफ' होगा।

इसी तरह से पी.ए.सी. की चवालीसवीं बटालियन के उस वक्त के कमान्डेन्ट आर.डी. त्रिपाठी जो मेरठ जनसंहार के जिम्मेदार थे, आज भी समाजवादी स.पा. के राज में उतने ही आराम और मौज से हैं जितने 'दलित', ब.स.पा. और 'फासिस्ट' भा.ज.पा. के जमाने में थे। ये बात याद दिलाने लायक है कि ये वही त्रिपाठी हैं जो 80 के दशक में पीलीभीत में सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस थे और जिन्होंने पटना जा रही बस में से 25 बेगुनाह सिक्खों को बाहर खींच कर एक मनगढ़ंत मुठभेड़ में गोली मार कर हत्या कर दी थी। सी.बी.आई ने इस अफसर और कुछ जवानों

के खिलाफ चार्जशीट दाखिल की थी पर इस पर अभी तक कोई 'एक्शन' नहीं हुआ है। जब ये कांड हुए थे तब 'समाजवादी' नेताओं ने बहुत शोर शराबा किया था। पर जब वे सत्ता में आये तो उन्होंने ने ये पक्का किया कि इस तरह के गुनाह करने वालों को कोई सज़ा न मिले।

उ.प्र. के भूतपूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह जिनके नेतृत्व में बाबरी मस्जिद को 6 दिसम्बर, 1992 को तोड़ा गया, 1999 में भा.ज.पा. द्वारा निकाले जाने के बाद मुलायम सिंह समाजवादी के बहुत करीब हो गये। भा.ज.पा. से निकाले जाने के बाद कल्याण सिंह ने राष्ट्रीय क्रांति पार्टी बनायी जिसने 2002 में स.पा. के गठबंधन में विधान सभा के चुनाव लड़े। जब स.पा. सत्ता में आयी तो मुलायम सिंह ने कल्याण सिंह के बेटे राजवीर सिंह को जो दिबाई (बुलन्दशहर) से विधानसभा के सदस्य हैं, कैबिनेट स्तर का स्वास्थ्य मंत्री बना दिया। कल्याण सिंह की बहुत ही करीबी विश्वसनीय भा.ज.पा. की भूतपूर्व विधानसभा सदस्य कुसुम राय को भी कैबिनेट मंत्री बनाया और 4 मॉल एवेन्यू पर कुसुम राय के पिता के नाम पर महात्तम राय ट्रस्ट को एक वी.वी.आई.पी. बंगला भी आवंटित किया। कुसुम राय के पिता लखनऊ महानगर के आर.एस.एस. के कार्यवाह थे। आज सभी जानते हैं कि कल्याण सिंह जो अटल बिहारी वाजपेयी की आलोचना करने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे वही कल्याण सिंह लोकसभा चुनावों से कुछ पहले वाजपेयी के नाम पर कसीदे गा गा कर 'घर वापस' आये।

स्वामी सच्चिदानन्द हरी साक्षी महाराज जो भा.ज.पा. के तीन बार सांसद रह चुके हैं, 1991 में मथुरा से और 1996 और 1998 में फर्रूखाबाद से और जो 1990 और 1992 अयोध्या आंदोलन में सबसे आगे थे और जिन्होंने बड़े गर्व से कहा था कि उन्होंने वो बस खुद चलाई थी जिसने 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के वक्त पुलिस का घेरा तोड़ा था।इन्हीं महानुभाव को मुलायम सिंह की स.पा. 2002 में राज्य सभा की सदस्यता बड़े गर्व से दी।

एक और भा.ज.पा. के एम.एल. सी. स्व. अजीत सिंह जिसके गुंडों ने 1998 में लखनऊ में संघ परिवार के खिलाफ बोलने पर 'सहमत' की एक टीम पर अपने गुंडों से हमला करवाया था। उन्हें इस साल के शुरू में सादर स.पा. में लिया गया और लखनऊ - उन्नाव की स्थानीय समितियों की तरफ से स.पा. का एम.एल.सी. बना दिया। दो महीने पहले इनके जन्म दिवस पर इनकी गोली मार कर हत्या कर दी गयी (साक्षी महाराज और अजीत सिंह दोनों ही कल्याण सिंह के करीबी माने जाते हैं)। आज अजीत सिंह के पिता रणजीत सिंह इसी क्षेत्र से स.पा. के एम.एल.सी. हैं।

आपराधिक रिकार्ड

रघुराज प्रताप सिंह उर्फ राजा भैया कुंडा (प्रताप गढ़) से एक निर्दलीय विधायक, जिनके पिता उदय प्रताप सिंह संघ परिवार के एक सक्रिय समर्थक और कार्यकर्ता हैं, आज मुलायम सिंह की कैबिनेट में खाद्य मंत्री हैं। पूर्वी उ.प्र. के इस सबसे ज्यादा बदनाम सामन्त के खिलाफ कई आपराधिक चार्ज लगे हुए हैं। दोनों बाप बेटों ने सक्रिय तौर पर भा.ज.पा. के उम्मीदवारों का प्रचार किया। राजा भैया के खिलाफ दिलेरगंज (कुंडा) में जुलाई 1995 में सांप्रदायिक दंगों को भड़काने में जिनमें 4 मुस्लिम महिलाएं मारी गयी थीं, केस दर्ज है। 90 के दशक में ही प्रतापगढ़ जिले के सुपरिन्टेंडेन्ट ऑफ पुलिस जसवंत सिंह ने इस आशय के कई पत्र भेजे कि इस विधायक की गतिविधियां सांप्रदायिक दंगे भड़का सकती हैं। 2002 में राजा भैया को मायावती सरकार ने **पोटा** के तहत गिरफ्तार किया था। इसी तरह के कट्टरपंथी, हिंदुत्ववादी और आर.एस.एस से जुड़े कई सदस्य स.पा. में शामिल हो गये हैं। दो साल पहले पवन पांडे, अकबरपुर (फैज़ाबाद से) एक निर्दलीय विधायक उ.प्र. की शिवसेना के प्रमुख, और एक खतरनाक गुनहगार अपने गिरोह के साथ 'समाजवादियों' में शामिल हुआ। इसी साल इलाहाबाद के भा.ज.पा. के भूतपूर्व श्यामा चरण गुप्ता स.पा. से बांदा के सांसद चुन कर पार्लियामेंट में पहुंचे। बीड़ी बनाने के धंधे में प्रमुख और कई होटलों के मालिक श्यामा चरण गुप्ता ने 90 के दशक के मध्य तक भा.ज.पा. को चुनावों में बहुत पैसा दिया। चंद्र भूषण सिंह फर्रूखाबाद के भा.ज.पा. के जिला अध्यक्ष 1993 में मोहम्मदाबाद क्षेत्र से विधायक चुने गये थे और 1996 में कनौज से भा.ज.पा. के सांसद चुने गए थे आज वही फर्रूखाबाद से स.पा. के सांसद हैं। जगतसिंह जो थाना भवन (मुज़फ्फरनगर) से 1993 में भा.ज.पा. के टिकट पर विधायक चुने गये थे 2001 में वही इसी क्षेत्र से स.पा. के विधायक चुने गये। अमर सिंह जो 1993 में खेसराहार (बस्ती) से भा.ज.पा. के टिकट पर विधायक चुने गये थे वही बाद में स.पा. के टिकट पर चुनाव लड़े। भूतपूर्व भा.ज.पा. मंत्री घनश्याम शुक्ला की विधवा नंदिता शुक्ला मुझेनार (गोंडा) से स.पा. के टिकट पर विधानसभा का चुनाव जीतीं।

हाल ही में भा.ज.पा. से निकाले गये पांच विधायक-मयंकेश्वर शरण सिहं (तिलोली), नरेंद्र सिंह वर्मा (मोहम्मदाबाद), कोविद कुमार सिंह (निगोही), अनिल पासवान (बावन) और दयाशंकर वर्मा (कोंच) 'देश की सबसे बड़ी धर्मनिरपेक्ष पार्टी' - समाजवादी पार्टी - में शामिल होने को आतुर हैं। समाजवादियों को कोई एतराज नहीं है। सिर्फ मुम्बई हाईकोर्ट का एक फैसला, जिसके मुताबिक इसको दल बदल माना जायेगा और ये पांचों विधायक 'अनएटैचड' माने जायेंगे, इनको स.पा. में शामिल होने से रोक रहा है। ये पांचों विधायक मुलायम सिंह के प्रतिनिधि रघुराज प्रताप सिंह और अक्षय प्रताप सिंह से (दोनों ही हिस्टरी-शीटर है) से खरेला में स.पा. में शामिल होना का रास्ता ढूंढ़ने के लिये मिले। रवीन्द्र पुन्डीर, भा.ज.पा. का इन्ही की तरह मेरठ से बदनाम विधायक इस मीटिंग में मौजूद था।

कांग्रेस में भाजपाई तत्व

कांग्रेस में आर.एस.एस और भा.ज.पा. से सहानुभूति रखने वाले तत्व हैं। उसकी सबसे ताज़ा मिसाल है दिल्ली की सीनियर कांग्रेस कॉउंसलर और दिल्ली यूनिवर्सिटी के छात्र संघ की भूतपूर्व अध्यक्ष शालू मलिक ने कहा कि स्वदेशी जागरण मंच (एस.जे.एम.) आंशिक तौर पर महात्मा गांधी के आदर्शों को मानता है। एक प्रेस कॉन्फ्रेंस को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि एस.जे.एम. महात्मा गांधी के दिखाये हुए आत्मनिर्भरता के मार्ग का अनुसरण कर रहा है। यही वजह है हमने (कांग्रेसी काउन्सलर) रोशनारा गार्डन में म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन द्वारा आयोजित गांधी जयंती मेले में एस.जे.एम. से जुड़ी दूसरी संस्था सेवा भारती को भी इस पांच दिन के मेले में आमंत्रित किया। इस मेले का उदघाटन कांग्रेस पार्टी द्वारा नियुक्त गवर्नर बी.एल. जोशी ने किया। इस तरह के तत्व साफ साबित करते हैं कि कांग्रेस पार्टी में कांग्रेस पार्टी की विचारधारा से अनभिज्ञ सदस्य हैं। यह अपने आप में चिन्ताजनक बात है।

वर्तमान लोकसभा - प्रारूप और चरित्र

—सैमुअल पॉल,एम.विवेकानन्द

मई 2002 के सुप्रीम कोर्ट के एक आदेशानुसार लोकसभा और विधान - सभा के चुनावों में खड़े सभी प्रत्याशियों को अपने बारे में हलफनामा जमा करना अनिवार्य किया गया। कोर्ट आर्डर में यह भी कहा गया कि यह हलफनामा सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। कोर्ट ने कहा कि हर नागरिक को चुनाव में खड़े उम्मीदवार की पृष्ठभूमि (बैकग्राउन्ड) और उसके पूर्ववृत (एन्टीसीडेन्टस) जानने का मूलभूत हक है। इस हलफनामे में उम्मीदवार अपनी शिक्षा, संपत्ति, राष्ट्रीय बैकों या सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं से लिये गये उधार और अपने ऊपर चल रहे या दर्ज मुकदमों की तफसील देने के लिए बाध्य है। ये आंकडे 541 सांसदों द्वारा दिये गये हलफनामों के अध्ययन का नतीजा हैं। इस अध्ययन से कुछ निष्कर्ष निकले हैं जो वर्तमान लोकसभा के समग्र प्रारूप और चरित्र को सामने लाते हैं

इस अध्ययन के मुताबिक 55% सांसद 36-55 वर्ष की आयु सीमा में आते हैं। 65 वर्ष से ज्यादा उम्र वाले 14% सांसद हैं और 35 वर्ष से नीचे की आयु के सांसद कुल 6.5 प्रतिशत हैं। वर्तमान लोकसभा यानि चौदहवीं लोकसभा में भा.क.पा. के 60 वर्ष से ज्यादा के सांसदों की संख्या सबसे अधिक है यानि 20%। द्र.मु.क के 18.8%, मा.क.पा. के 18.6% कांग्रेस और भा.ज.पा. के करीब 16% सांसद 60 वर्ष की ऊपर की आयु हैं। युवा सांसदों की संख्या सबसे ज्यादा ब.स.पा में यानि 26.3% इसके बाद शिवसेना 16.3% रा.ज.द के 13% हैं। कांग्रेस पार्टी में युवा सांसद 4.8% और भा.ज.पा. में 5.8%।

करीब 28% सांसद 45 वर्ष से कम आयु के हैं। उत्तर भारत से निर्वाचित सदस्य जिनकी आयु 45 वर्ष से कम हैं, उनका प्रतिशत है 34.4% इसके बाद पश्चिम भारत से 24.2%, दक्षिण से 23.3% और पूर्व भारत से 22.7% आते हैं। 20%, वरिष्ठ सांसद असम, कर्नाटक, पंजाब, प.बंगाल और उत्तरांचल से आते हैं। सबसे युवा सांसद (35 वर्ष से कम) हरियाणा 20%, जम्मू कश्मीर 16.7% और उ.प्र. से 15% हैं।

73% सांसद ग्रेजुएट और 41.7% पोस्ट ग्रेजुएट हैं। कानूनविदों की संख्या 21.5% सबसे ज्यादा है। कुल मिलाकर 5.9% सांसद ऐसे हैं जो हाई स्कूल से अधिक शिक्षा नहीं ले पाये। बी.जे.डी. मा.क.पा और रा.ज.द. के 80 प्रतिशत सांसद ग्रेजुएट हैं कांग्रेस के 71% और 74% भा.ज.पा. के सांसद ग्रेजुएट हैं। ब.स.पा. के सांसदों में शिक्षा का स्तर कुछ कम है। इसके 15.8% सांसद हाई स्कूल से भी कम शिक्षा प्राप्त हैं। हि.प्र. के सभी सांसद, आसाम के 86% केरल के 84.2% सांसद ग्रेजुएट हैं। हाई स्कूल से कम शिक्षा प्राप्त सांसद सबसे ज्यादा हरियाणा और उत्तरांचल से हैं 20% । 81.3% प्रतिशत सांसद दक्षिण भारत से ग्रेजुएट हैं और पश्चिम भारत से 64.3% ग्रेजुएट हैं।

कुल मिलाकर 24.6% सांसद एस.सी.एस.टी हैं। इस वर्ग में 26.8% भा.ज.पा. और 22.1% कांग्रेस पार्टी के हैं। 27.3% सांसद बी.जे.डी. से आते हैं। इस वर्ग में 35% प्रतिशत सांसद 45% वर्ष से कम आयु के हैं जबकि यही प्रतिशत सामान्य कैटेगिरी में 25.2% है। 20% एस.सी.एस.टी. सांसद हाई स्कूल पास है जबकि यही प्रतिशत सामान्य कैटेगिरी में 14.6% है। 70% एस.सी.एस.टी. सांसद ग्रेजुएट हैं जबकि सामान्य कैटेगिरी में यह प्रतिशत 74% है। 33.1% एस.सी.एस.टी. सांसद पोस्ट ग्रेजुएट है जबकि सामान्य कैटेगिरी में 29.8% है।

कुल मिलाकर 8.3% महिला सांसद हैं। सबसे ज्यादा महिला सांसद यानि 9% एस.सी. एस.टी. कैटेगिरी से आती हैं। द्र.मु.क. की 18.8% और शिवसेना की 16.7% सांसद महिलाएं है। रा.ज.द. की 4.3% महिला सांसद हैं। 44% महिलाएं 45 वर्ष से कम आयु की हैं जबकि पुरूषों में यह प्रतिशत 26 है। 66 वर्ष से ज्यादा की आयु की कोई महिला सांसद नहीं हैं जबकि 15.3% पुरूष सांसद 66 वर्ष से ज्यादा की आयु के हैं। 82% महिला सांसद ग्रेजुएट हैं जबकि यही प्रतिशत पुरूषों में 72.5 है। 37.8% महिला सांसद पोस्ट ग्रेजुएट हैं और कुल 30% पुरूष सांसद पोस्ट ग्रेजुएट हैं।

जहां तक चल और अचल संपत्ति का सवाल है औसत संपत्ति 1.64 करोड़ प्रति सांसद है (हालांकि सांसदों की संपत्ति 11,000 करोड़ से लेकर 66.6 करोड़ के बीच में है) एस. सी.एस.टी. सांसदों की संपत्ति अन्यों के मुकाबले में एक तिहाई है। 74.6% सांसदों के पास कृषि के लिये ज़मीन है। रा.ज.द. के 43.5%, ब.स.पा. के 35.3% भा.ज.पा. के 24.1% और सबसे कम 18.6% कांग्रेस के सांसदों के पास कृषि के लिये ज़मीन है। 70% भा.क.पा. 57% मा.क.पा. और एक तिहाई शिवसेना के सांसदों के पास खेती की ज़मीन नहीं है।

एस.सी.एस.टी. सांसदों की औसत संपत्ति 58 लाख रुपये है जबकि दूसरे सांसदों की औसत 1.58 करोड़ है। 12 सांसदों में से एक एस.सी.एस.टी. सांसद करोड़पति है जबकि दूसरे सांसदों में हर तीन सांसदों में से एक सांसद करोड़पति है। हर पांच में से एक एस.सी.एस.टी.सांसद की संपत्ति दस लाख से कम है जबकि दूसरे सांसदों में यही संख्या सोलह में से एक है। अगर संपत्ति को पार्टियों के मुताबिक देखा जाये तो कांग्रेस के सांसदों के पास 3.1 करोड़ प्रति सांसद, समाजवादी और शिवसेना के पास 1.5 करोड़ प्रति सांसद। एक करोड़ से ज्यादा संपत्ति वाले सांसद ब.स.पा. और द्र.मु.क. से आते हैं। भा.ज.पा. के सांसदों की औसत संपत्ति एक करोड़ प्रति सांसद से कम है। मा.क.पा. के सांसदों की संपत्ति 23 लाख और भा.क.पा. की 25 लाख है। एस.सी.एस.टी. सांसदों की औसत संपत्ति 58 लाख है।

सबसे ज्यादा करोड़पति सांसद पंजाब से यानि 69.3%, आंध्र प्रदेश 47.6% महाराष्ट्र 41.7% से आते हैं। प. बंगाल से 28.6%, उड़ीसा से 28.6% केरल से 26.3% सांसद हैं जिनकी औसत संपत्ति प्रति व्यक्ति दस लाख रुपये से कम है।

राजनीति का आपराधीकरण

23.2% सांसदों के खिलाफ या तो आपराधिक मामले दर्ज हैं या कोर्ट में चल रहे हैं। 12 में से एक सांसद को इन मामलों में जुर्माना या एक साल से कम की कैद हो सकती है। 50% सांसदों को पांच साल या उससे ज्यादा की कैद हो सकती है। 30.4% प्रतिशत सांसदों की उम्र 36 45 के बीच है। भा.ज.पा. के 20% सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं जबकि कांग्रेस में यह संख्या 17% है। असम, हि.प्र.,जम्मू कश्मीर और उत्तरांचल के किसी भी सांसद के खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं है। पश्चिमी राज्यों से 31.3%, उत्तरी राज्यों से 28.2% सांसदों के खिलाफ मामले दर्ज हैं। पूर्वी भारत से सबसे कम यानि 11.4% सांसदों के खिलाफ मामले दर्ज हैं। दक्षिण भारत से 20% सांसदों के खिलाफ मामले दर्ज हैं। चार राज्यों बिहार, उ.प्र., म.प्र. और झारखंड से 50% सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं जिनमें उन्हें 5 साल या ज्यादा की सजा हो सकती है। इन 4 राज्यों में निर्वाचित 162 सांसदों में से एक चौथाई स्कूल पास हैं और 30% के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। जहां तक पार्टियों का सवाल है, ब.स.पा., स.पा., रा.ज.द. और झा.मु.मो. के ज्यादातर सांसद इन चार राज्यों में आरोपित हैं। भा.ज.पा. के सांसदों का प्रतिशत भी ज्यादा है। सबसे कम कांग्रेस पार्टी के सांसद आरोपितों में हैं।

इन आंकड़ों से जो निष्कर्ष निकलते है वो हैं, (1) 14 वीं लोकसभा युवा सांसदों की है; ब.स.पा. से सबसे ज्यादा युवा सांसद हैं और कांग्रेस पार्टी में सबसे कम; (2) अधिकांश सांसद ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट हैं। इनमें कानूनविद सबसे ज्यादा हैं (3) कुल मिलाकर 24.6 प्रतिशत सांसद एस.सी.एसटी. हैं, (4)) महिला सांसद सबसे ज्यादा द्र.मु.क. से आती है; (5) चल-अचल औसत संपत्ति 1.64 करोड़ प्रति सांसद है। सबसे ज्यादा करोड़पति सांसद पंजाब से आते है; (6) 23.2 प्रतिशत सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। चार राज्यों - बिहार, उ.प्र., और झारखंड से 50 प्रतिशत यानि 81 सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं जिसमें उन्हें पांच साल या ज्यादा की सजा हो सकती है।

इकनोमिक एंड पोलिटीकल वीकली से साभार (6–12 नवम्बर 2004) के अंक से

रिमझिम बरसे मेह

अजन्ता की गुफाएं :एक साझी विरासत

-डॉ. योगेश भटनागर

उपनिषदों की रचना ई.पू. आठवीं या नौवीं सदी में हुई थी। इन दार्शनिक पुस्तकों ने भारत के सभी धर्मों को प्रभावित किया था। उपनिषद आत्मा और परमात्मा के बीच के संबंधों के बारे में बताते हैं और बताते हैं रचना की एकात्मकता के बारे में। भौतिक विश्व को एक मिथ्या (इलयूज़न) माना गया है। इनका मानना है कि इच्छाएं, लगाव और मोह इंसान को इस क्षणभंगुर संसार से बांधे रखता है। मानव को इस भौतिक-संसार से ऊपर उठना है और उस सबसे मिलना है जो शाश्वत है, अनादि, है अनंत है।

सौंदर्योपासना का दर्शन कश्मीर में खासकर अभिनवगुप्त के काल में बहुत तेज़ी से विकसित हुआ। यह दर्शन उपनिषदों से बहुत ही करीब से जुड़ा हुआ था। इसका मानना था कि मानव को जो परमानन्द अनुभव किसी भी सुंदरता को, वो चाहे कला में हो या प्रकृति में हो, देखने में प्राप्त होता है वही ब्रह्मानन्द या शाश्वत आनन्द होता है। इस दर्शन का ऐसा विश्वास था कि सुंदरता की अनुभूति ऐसी अनुभूति होती है जिसमें मिथ्या का पर्दा हट जाता है और मानव अपने अंर्तमन के एकत्व का इस ब्रह्माण्ड की रचना के साथ का संबंध देख सकता है। इस तरह से देखा जाये तो कला ने भारतीय धर्मों में एक अहम भूमिका निभाई है।

ये विश्वास कि संसार मिथ्या है और आत्मा ब्रहमांड का हिस्सा है, इस नज़रिये से कई विचारकों और कलाकारों ने अपनी अंर्तआत्मा को समझने की कोशिश की। आत्मा की यही शान्ति और परमानन्द भारतीय कला में अभिव्यक्त है। गुप्त और वक्कटकों के काल में चौथी से छठी सदी (ई.पू.) में ये कला पायी जाती है। उत्तर भारत में शिल्पकला के कई उदाहरण पाये जाते हैं। जिनमें सौंदर्य की अभिव्यक्ति बड़ी ही विलक्षण है। इन मूर्तियों की आंखें, नाक की नोक पर टिकी होती है और चेहरे पर एक अलौकिक सुंदरता झलकती है। चित्रकारी की बात की जाए तो ये अजन्ता की गुफाओं के भित्ती चित्रों में देखी जा सकती है। अजन्ता की गुफाओं के भित्ती चित्र भारतीय कला के महान दर्शन के उदाहरण हैं।

औरंगाबाद (महाराष्ट्र) से करीब सौ किलोमीटर दूर सहयाद्री पहाड़ों में वघोरा नदी की घाटी में अजन्ता की गुफाएं पायी जाती हैं। इन गुफाओं में दो विभिन्न धाराओं का संगम है : एक चित्रकला के विकास का उत्कर्ष और दूसरा बुद्ध का करुणा दर्शन। चित्रकला और करुणा के संगम की इन पेंटिंग्स ने ऐसी शैली को जन्म दिया जिसने बाद में सारे देश की कला को प्रेरित किया, प्रभावित किया और आज का वर्तमान रूप दिया। अजन्ता की पेंटिंग्स एशिया की सारी क्लासिक पेंटिंग्स का आधार मानी जाती हैं।

बौद्ध सम्राट अशोक ने तीसरी सदी (ई.पू.) में महाराष्ट्र में बौद्ध भिक्षु भेजे थे। सम्राट अशोक के काल में ही चट्टानों में कटी बिहार राज्य की बराबार गुफाओं से प्रेरित होकर बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध विहार (मोनेस्ट्रीज़) और चैत्तय (प्रार्थना स्थल) बनाने शुरु किये। दूसरी सदी से सातवीं सदी तक (ई.पू.) सहयाद्री की पहाड़ियों में पश्चिम भारत में करीब 800 चट्टानों को काटकर गुफाएं बनायी गयीं। ये गुफाएं अपने आप में बुद्ध और उनके दर्शन का एक प्रशस्ति पत्र हैं। इन 800 गुफाओं में सबसे ज्यादा प्रशस्त, भव्य और सुन्दर गुफाएं अजन्ता में पायी जाती हैं। यहां पर हथौड़े और छेनी से, रंगों और ब्रश से, मानवजाति के लिये ऐसी कला की रचना की गयी जो अपने आप में शाश्वत है, अमर है।
अजन्ता में 31 गुफाएं हैं। इन गुफाओं को घोड़ें की नाल रूपी वघोरा नदी की घाटी में दो चरणों में खोद कर बनाया गया। पहला चरण दूसरी सदी (ई.पू.) के आस-पास और दूसरा चरण चौथी और छठी सदी (ई.पू.) के बीच। दोनों चरणों सातवाहनों और वक्कटकों के राज्य के दौरान में पूरे हुए। गुफाओं को उनके बनाने के समय से नहीं पर क्रम से नम्बर दिये गये हैं।

अजन्ता में शुरू की गुफाएं बुद्ध की हीनयान सिलसिले की हैं और बाद की महायान सिलसिले की हैं। हीनयान सिलसिला बुद्ध की प्रतिमा बनाने में विश्वास नहीं रखता था। ये सिलसिला प्रतीकों जैसे स्तूप और चक्र (पहिये) की पूजा करता था। दूसरी सदी की गुफा नम्बर दस आज तक सबसे पुरानी ऐतिहासिक चित्रकला की प्रथा की जीवन्त मिसाल है। मूर्तियों के सिर का श्रृंगार, गहने और कपड़े वैसे ही हैं जैसे उसी काल की सांची और भरहुत की मूर्तियों में पायी जाती हैं।

भव्य और आलीशान पेंटिंग्स पांचवी और छठी सदी (ई.पू.) के दौरान की गयीं। तब तक बुद्धिज्म महायान सिलसिले का पूरी तरह विकास हो चुका था। इस सिलसिले के मुताबिक बुद्ध अब मनुष्य का रूप ले चुके थे और भगवान की तरह पूजे जाते थे। महायान सिलसिला बोधिसत्त्वों में भी विश्वास करता है यानि ऐसे इंसान जो ज्ञान की खोज में व्यस्त हैं और जो अन्त में मानवजाति को मोक्ष प्राप्त करने में मदद करेंगे। पांचवीं और छठी सदी (ई.पू.) की पेंटिंग्स जातक कथाओं को चित्रित करती हैं।। ये कथाएँ बुद्ध के उन पूर्वजन्मों की हैं जब बुद्ध मोक्ष के मार्ग पर चल रहे थे। ये कहानियां एक सदाचारी जीवन की कहानियां हैं और बुद्ध के अनुयायियों के लिये उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। गुफाओं की छतों (अंदर की) पर मानव जीवन चित्रित है, फल-फूल चित्रित हैं, और चित्रित हैं जानवर और मिथकीय मानव। गुफा नम्बर सोलह दूसरे चरण की रचनाओं की सबसे पहली कृति है जो पांचवी सदी (ई.पू.) में शुरू हुई। इस गुफा को वक्कटक राजा हरिसेना के एक मंत्री वराहदेव के दान से बनाया गया। अजन्ता की गुफाओं की बहुत सारी पेंटिंग्स वक्त के साथ-साथ खत्म हो गयी हैं पर अभी भी बुद्ध जीवन से जुड़ी कुछ पेंटिंग्स इन गुफाओं की दीवारों पर देखी जा सकती हैं। इनमें से एक बुद्ध के सांडू नन्द के परिवर्तन से जुड़ी हैं। अजन्ता की महान पेंटिंग्स में एक पेंटिंग है जिसमें नन्द की पत्नी शोकाकुल है क्योंकि उसके पति नन्द ने उसे त्याग दिया है और वो उसे छोड़कर चला गया है। इस पेंटिग का नाम है 'मरती हुई राजकुमारी'। ब्रिटिश चित्रकार जॉनग्रिफीथ, जिसने 1872 से 13 साल तक इन पेंटिंग्स का अध्ययन किया, इसके बारे में कहना है कि जहां तक भावनाओं, करुणा और कहानी कहने के तरीके का संबंध है तो चित्रकला के इतिहास में इस पेंटिंग का स्थान हमेशा एक विशेष रहेगा। अगली महान गुफा है नम्बर सत्रह जो हरिसेना के एक जागीरदार ने बनवाई। इस गुफा की दीवारें जातक कथाओं से भरी हैं। बहुत सी कथाएं बुद्ध के पूर्वजन्मों, जो जानवरों, बन्दर, भैंस और हाथी के रूप में हुए थे, से जुड़ी हैं। इस गुफा की दायीं दीवार पर कपिल जातक को चित्रित किया गया है जिसमें बुद्ध का जन्म बोधिसत्व बंदर के रूप में हुआ था। इस कथा में बंदर खाई में गिरे एक शिकारी की जान बचाता है। बाद में जब बंदर सो रहा होता है तो ये शिकारी इसे मारने की कोशिश करता है क्योंकि वो भूखा था। इतने में ही बोधिसत्त्व बंदर जाग जाता है और इतने स्वार्थी होने के लिये शिकारी की यह कहकर भर्त्सना करता है कि वो उसे ही मार देना चाहता था जिसने उसकी जान बचायी थी।

इसी गुफा में एक बहुत ही शक्तिशाली पेंटिंग है। इसमें चित्रित किया गया है कि बुद्ध अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल के सामने आते हैं। यशोधरा ने राहुल को समझा रखा है कि वो बुद्ध से अपना कानूनी उत्तराधिकार मांगे क्योंकि वो राजकुमार का पुत्र है। बुद्ध को इस पेंटिंग में अपना भिक्षादान आगे बढ़ाते दिखाया गया है क्योंकि उसके पास देने के लिए अब यही बचा था। इस पेंटिंग में यशोधरा ने अपना पूरा श्रृंगार किया हुआ है जिससे वो बुद्ध को फिर से मोहित कर सके।

पांचवीं सदी (ई.पू.) के आखिर में बनायी गयी गुफा नम्बर एक राजा हरिसेना ने खुद बनवायी थी। इसमें भी कुछ भव्य पेंटिंग्स हैं। गुफा के मुख्य द्वार के फौरन बाद बोधिसत्व पद्मपाणी-कमल-वाहक का चित्र है। बोधिसत्व के चारों तरफ उछल कूद करते हुए बंदर और आनंद विभोर संगीतज्ञ बनाये गये हैं। इस सब हर्षोल्लास के बीच बोधिसत्व बिल्कुल शान्त हैं : अपनी अंर्तआत्मा में झांक रहे हैं। ये पेंटिंग अपने आप में भारतीय कला की महान कृतियों में से एक है। इस चित्र में एक असीम चिर शान्ति के दर्शन होते हैं। मुख्य द्वार के दायीं ओर बोधिसत्त्व-वज्रपाणी-वज्र वाहक का चित्र है। जहां पद्मपाणी शान्ति दर्शाता है वहीं वज्रपाणी एक भव्य मुकुट पहने हैं जो ईश्वर की महानता और भव्यता का द्योतक है।

अजन्ता की गुफाओं का कथ्य कभी ऊपर से नीचे जाता है तो कभी नीचे से ऊपर, कभी दायें से बायें तो कभी बायें से दायें। ये दर्शाता है कि भारतीय दर्शन में समय को कैसे देखा और समझा जाता है। भारतीय दर्शन में समय और स्थान 'माया' का हिस्सा है। एक ही सत्य और यथार्थ है और वो है शाश्वत सत्य। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों साथ-साथ हैं।

अजन्ता के चित्रकारों ने जिस शैली को अपनाया वो विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में पायी जाती है। यह एक मौखिक परम्परा थी जिसे सदियों तक बाप ने बेटे को दी। लिखित रूप में ये शैली अजन्ता पेंटिंग्स के दूसरे चरण यानि पांचवीं और छठी सदी (ई.पू.) में पायी जाती है। इस पुस्तक में चित्रकार के लिये हर तरह के निर्देश हैं। इसमें तीन तरह के तरीके बताये गये हैं जिनसे शेडिंग की जाती है और सौ तरीके बताये गये है जिनसे चित्रकार को पेंट करना चाहिये। चित्रकार को बताया गया है कि कैसे अलग अलग तरह के आदमियों का चित्र बनाया जाये। इन सबके बाद बताया गया है कि यह सब नियम एक अच्छी पेंटिंग नहीं देंगे जब चित्रकार की अपनी रचनात्मकता इसमें जुड़ेगी तभी एक अच्छी कृति बनेगी। आखिर में ये बताया गया है कि 'पेंटिंग की आंखे खुली रहनी चाहिये।' चित्रकार को ये बताया गया है कि वो पेंटिंग को उसका जीवन दे सकता है। यह पुस्तक एक जीवन्त उदाहरण है जो परम्परा और विरासत को आगे बढ़ाने के साथ-साथ चित्रकार को ये बताती है कि उसे अपनी स्वयं की संकल्पना को भी इस्तेमाल करना चाहिये। अजन्ता की गुफाओं में चित्रकार की अपनी संकल्पना, पीछे की ओर झुके खम्भों और बर्तनों के दीर्घवृतीय (इलीपटीकल) मुंह में दिखाई पड़ती है। इसी तरह वॉल्यूम (आयतन) अतिसुंदर शेडिंग के माध्यम से दिखाया गया है जो इस समय की चित्रकला में आकृति गोलाई को दर्शाता है।

चित्रकार का यहां उद्देश्य उसके आसपास के यथार्थ का फोटोग्राफिक चित्रण नहीं था। उसका दर्शन उसे यह बता चुका था कि भौतिक संसार तो मिथ्या (इल्यूज़न) है और उसे इसका आवरण उठाकर इसके आगे देखना है।

आँखें आत्मा से मिलने की खिड़की है और भारतीय चित्रकार अपने विषय की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए आँखों को ही माध्यम चुनता है। भारतीय चित्रकला में नयनों को पांच तरह से पेंट किया जा सकता है। चित्रसूत्र के मुताबिक आँखें छपकारा-ध्यानमग्न, मत्स्योदरा-नारी या प्रेमाकुल; उत्पलापत्रभा--शान्त या सौम्य; पद्मपत्रानिभा - भयभीत या आर्तृ और शंखकृति-क्रोधित या वेदनापूर्ण होती है जिस तरह अजन्ता की गुफाओं में आंखों को पेंट किया गया इसने वक्त के साथ-साथ एक शैली और परम्परा का रूप ले लिया जो दूर-दूर तक पहुंची। वर्तमान भारत में इस शैली ने बंगाल स्कूल, अमृता शेरगिल और उन जैसे कई चित्रकारों को प्रभावित किया।

पाठकों को शायद पता नहीं होगा अजन्ता के चित्रकारों को पेंटिंग्स पर अपने नाम अंकित करने की ज़रूरत ही नहीं थी। उनको इस बात की तसल्ली थी कि उन्होंने इस संसार में अपनी भूमिका अच्छे से निभाई : अपनी प्रतिभा और अनुभूति के माध्यम से उन्होंने रचना की शाश्वत ज्वाला को दैदीप्यमान रखा।

अजन्ता की म्यूरल पेंटिंग्स, फ्रेसकोज़ (पलस्तर सूखने से पहले, जल मिश्रित रंग से चित्रण की विधि) नहीं हैं क्योंकि वो गीले चूने के पलस्तर पर पेंट नहीं की गयी हैं। इन म्यूरलस को एक किस्म की गोंद को सूखे चूने के एक पतले लेप में मिलाकर बनाया गया। इस ऊपरी सतह के नीचे पलस्तर की दो तहें दीवारों को ढकने के लिए चढ़ायी जाती थीं पहली तह खुर्दरी मिट्टी की एक गाढ़ी तह होती थी जो चट्टान के चूरे, सब्जियों के पत्तों, घास और दूसरी चीजों को मिलाकर बनायी जाती थी, दूसरी तह एक महीन लेप की होती थी जिसमें मिट्टी, चट्टान का चूरा या रेत और सब्जियों के पत्ते होते थे। ये तह चूने के लेप को चिकना बनाता था जिससे कि पेंटिंग बनायी जा सके। चित्रकार ने रंग भी इन्ही पहाड़ियों में से लिये। चित्रकार ने अपने पीले और लाल रंग के लिये गेरु का, काले रंग के लिए लालटेन से बनी काली कालिख और सफेद रंग के लिये चूने का इस्तेमाल किया। अपने नीले रंग के लिये सिर्फ नीलापल (लेपीस - लेजुली), जो अफगानिस्तान से आता था, का इस्तेमाल किया। इन सब रंगों को तरह-तरह से मिलाकर चित्रकार ने और दूसरे रंग बनाये। मध्यकाल में ये गुफाएं कहीं लुप्त हो गयीं। 29 अप्रैल 1819 को मद्रास इन्फेन्टरी के एक सिपाही जॉन स्मिथ ने अचानक इन गुफाओं को फिर से खोज निकाला और तब से आज तक हर चित्रकार छोटा या बड़ा अजन्ता की पेंटिंग्स से प्रेरणा लेता रहा है, प्रभावित रहा है। अजन्ता शैली में बनायी गयी उसी समय की अन्य गुफाओं यानि बाघ, पीत्तलखोरा और बदामी की गुफाओं में देखी जा सकती हैं। महाराष्ट्र के भज और केरला के कनेहरी की बुद्धिस्ट गुफाओं में भी अजन्ता शैली की पेंटिंग्स देखी जा सकती हैं। छठी से दसवीं सदी (ई.पू.) की पेंटिंग्स एलोरा की गुफाओं में पायी जाती हैं। कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर में सातवीं सदी की पेंटिंग्स पायी जाती हैं। तमिलनाडू की जैन गुफाओं में नौवीं सदी (ई.पू.) की पेंटिंग्स पायी जाती हैं। तंजावुर के वृहदीश्वर के मंदिर में दसवीं सदी (ई.पू.) की पेंटिंग्स हैं। इन सब गुफाओं और मंदिरों में अजन्ता शैली की पेंटिंग्स हैं जो 2200 साल पहले शुरू हुईं थीं। 1930 में ब्रिटिश म्यूज़ियम के निदेशक लार्सन बिनयान ने कहा था 'जो भी कोई चीन या जापान की कला का इतिहास समझने की कोशिश करेगा उसे अजन्ता की गुफाओं से शुरू करना होगा।' अजन्ता शैली दक्षिण भारत से श्रीलंका तक पहुंची और वहां से दक्षिण-पूर्व एशिया। उसी दौरान अजन्ता की विरासत ने अफगानिस्तान, मध्य एशिया और चीन के चित्रकारों को प्रेरित किया और वहां से ये शैली चीन और जापान पहुंची।

हमें ये बात याद रखनी चाहिये कि अजन्ता की पेंटिंग्स आज भारत की साझी विरासत का हिस्सा हैं। साथ ही विश्व में चित्रकला के इतिहास में एक सुनहरा पन्ना हैं क्योंकि ये चित्र जीवन के अलौकिक और करुण पक्ष को चित्रित करती हैं। इनमें चित्रकार का नज़रिया जीवन में परिवर्तन के विरोध में जद्दोजहद का नहीं बल्कि रचना सौन्दर्य (हार्मोनी) को आत्मसमर्पण का है और रचना में निहित ईश्वरत्व की स्वीकृति का है।

अजन्ता की एक गुफा में ही उसकी पेंटिग्स में निहित करुणा के बारे में कहा गया हैः चित्रकार को कुछ देने की खुशी ने इनता आत्मविभोर कर दिया कि उसके अंदर वेदना महसूस करने की जगह बची ही नहीं। इन शब्दों में बुद्ध दर्शन के साथ-साथ भारत की साझी विरासत का एक दार्शनिक नज़रिया भी मिलता है। हम सब को साझी विरासत के इस शाश्वत प्रतीक और परम्परा को महफूज़ रखना है। अजन्ता की साझी विरासत को मकबूल फिदा हुसैन और उन जैसे बहुत सारे चित्रकार जिन्दा रखे हुए हैं और आगे बढ़ा रहे हैं। यह बात अपने आप में तसल्लीदेय है।

पृष्ठ 5 का शेष

यूं तो यू.पी.ए. सरकार ने क्या-क्या नहीं किया इसकी एक बड़ी फेहरिस्त बन सकती है पर खुद प्रधानमंत्री ने दो बड़ी गलतियां की हैं। पहली, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का पहली प्रेस कॉन्फ्रेंस में और दूसरी मॉन्टेक सिंह अहलूवालिया द्वारा योजना आयोग में मनोनीत विदेशी विशेषज्ञों के विवाद पर प्रधानमंत्री का फैसला। पहली प्रेस कॉन्फ्रेंस में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि वो वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों तरह के रूढ़िवाद (फंडामेंटलिज़्म) के खिलाफ हैं। ये उन्होंने उन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में कहा जो उनसे शिक्षा के धर्मनिरपेक्षीकरण और अंडमान निकोबार में सावरकर की प्लैक हटाने के विवाद पर पूछे गये थे। हत्या के जुर्म में गिरफ्तार शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती के बारे में भी प्रधानमंत्री का रुख नर्म हिंदुत्व की तरफदारी का नज़र आता है। कोई भी पुजारी, महन्त या संत एक खास तवज्जो (ट्रीटमेंट) का अधिकारी नहीं हो जाता अगर वो हत्या के मामले में लिप्त है।

ये कोई विश्वास नहीं करेगा कि पुराने और वरिष्ठ कांग्रेसी नेता मनमोहन सिंह अपने शब्दों का मतलब नहीं जानते। कोई यह भी नहीं मानेगा कि वामपंथियों ने शिक्षा का सांप्रदायिकरण किया हो या इतिहास को विकृत किया हो। ये कहकर उन्होंने वामपंथियों और दक्षिणपंथियों को एक जगह रख दिया जबकि मनमोहन सिंह जानते हैं कि पिछले छः सालों में भा.ज.पा. सरकार ने किस तरह इतिहास का पुर्नलेखन करवाया, शिक्षा को सांप्रदायिक, रूढ़िवादी और कट्टरपंथी बनाया। ऐसी दो असमान स्थितियों में तटस्थता अपनाना एक तरह से दक्षिणपंथियों को समर्थन देना है और साथ ही ये न्यायोचित भी नहीं। सावरकर विवाद पर भी मनमोहन सिंह ने अपने आप को तटस्थ रखा जब उन्होंने सावरकर को देशभक्त तो माना पर साथ ही उन्होंने विचारधारात्मक आधार पर अपने सावरकर से मतभेद बताये। कौन मानेगा कि मनमोहन सिंह को स्वतंत्रता संग्राम में सावरकर की क्या भूमिका थी, ये पता नहीं। सावरकर ने द्विराष्ट्रीय सिद्धांत और हिंदुत्ववाद की परिभाषा दी थी जो आजकी भा.ज.पा. की विचारधारा है।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष मॉन्टेक सिंह अहलुवालिया द्वारा विदेशी विशेषज्ञों को योजना आयोग की विभिन्न कमिटियों पर मनोनीत करने के फैसले का विरोध सिर्फ वामपंथी ही नहीं कर रहे थे बल्कि और दूसरी पार्टियां भी कर रही थीं। विरोध का आधार था कि विश्व बैंक और एशिया डेवलपमेंट बैंक के विशेषज्ञ भारतीय स्थितियों को नहीं जानते, इसके अलावा वो जिनके मुलाज़िम हैं वो अपने मालिकों की विचारधारा को ही आगे बढ़ायेंगे, और कोई कारण नहीं है कि कोई सरकार विदेशियों को अपने योजना आयोग पर मनोनीत करे। मनमोहन सिंह अगर लेफ्ट ऑफ दी सेन्टर की विचारधारा में विश्वास रखते हैं तो विदेशी विशेषज्ञों (वो चाहे भारतीय मूल के ही क्यों न हों) को हटा सकते थे पर उन्होंने सारी 19 समितियों को बर्खास्त कर अपनी दक्षिणपंथी विचारधारा का सबूत दिया।

प्रधानमंत्री के ये सब फैसले और प्रेस को जवाब एक मूलभूत सवाल खड़ा करते हैं - मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. सरकार जिसे वामपंथियों का बाहर से समर्थन हासिल है उसकी अपनी पहचान क्या हो - वामपंथी झुकाव, तटस्थ या फिर भा.ज.पा. के साथ सामंजस्य बैठा कर भा.ज.पा. को साथ ले चलने की यानि भा.ज.पा. की बी. टीम बनकर राज करने की। चुनावी घोषणा पत्र को मद्देनज़र रखते हुए और आम आदमी से किये गये वायदे - समानता, सामाजिक न्याय, बहुलतावाद में विश्वास और हर भारतीय का मानवीय भविष्य को देखते हुए यू.पी.ए. सरकार को लेफ्ट ऑफ दी सेन्टर या सेन्टर लेफ्ट की पहचान बनानी ज़रूरी है। पर पिछले छः महीने की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियां इशारा दूसरी तरफ कर रही हैं। तटस्थता (न्यूटरलेटी) की तरफ नहीं। ये सब एक और तथ्य की तरफ भी इशारा कर रहे हैं और वो ये है कि मनमोहन सिंह स्वयं कांग्रेस पार्टी की विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं और वो देश को एक अफसरशाह की तरह अपने व्यक्तिगत सपनों के मुताबिक दिशा देना चाहते हैं। अगर मनमोहन सिंह की कांग्रेस पार्टी की विचारधारा से प्रतिबद्धता ऐसी ही कमज़ोर, अस्पष्ट, अनिश्चित और तटस्थ रही तो भा.ज.पा. को फिर से सत्ता में आने के लिये कुछ नहीं करना पड़ेगा। पर मनमोहन सिंह को इतिहास माफ नहीं करेगा। कांग्रेस पार्टी, और सभी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, और वामपंथी ताकतों को ये जल्दी ही सुनिश्चित करना पड़ेगा कि मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली सरकार वैचारिक प्रतिबद्धता के दायरे में काम करे और सिर्फ 4 प्रतिशत जनता के हित में काम न करे।

ये इस देश का दुर्भाग्य है कि जब-जब कांग्रेस समर्थित गठबंधन सरकारें आयीं तब-तब प्रधानमंत्री ऐसा आदमी बना जो विचाराधारात्मक धरातल पर या तो कटिबद्धता विहीन निकला या भा.ज.पा. के करीब जैसे चंद्रशेखर, आई.के. गुजराल और देवेगौड़ा और आज जब कांग्रेस के नेतृत्व में वामपंथ समर्थित गठबंधन सरकार बनी है तब एक ऐसा प्रधानमंत्री बना है जिसकी अपनी पार्टी की ही विचारधारा के प्रति अपनी स्वयं की प्रतिबद्धता तटस्थ और कमजोर नज़र आती है। ये अपने आप में शुभ संकेत नहीं हैं।

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

33-बी/1, तीसरी मंज़िल, प्रतीक मार्किट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफैक्सः 091-11-26177904

ईमेलः <notowar@rediffmail.com>

☐ केवल सीमित वितरण के लिए